अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-39, अंक-18, 01-15 मई, 2016

व्यक्तिगत आचरण का महत्त्व

कल की दुनिया का स्वरूप एक ऐसा समाज होगा, एक ऐसा समाज होना चाहिए, जिसका आधार अहिंसा होगी। यह एक दूर का आदर्श, एक अव्यवहार्य स्वप्नमय ध्येय भले ही मालूम हो, लेकिन वह तनिक भी अप्राप्य नहीं है, क्योंकि हम उसका अमल अभी और यहाँ कर सकते हैं। भविष्य की जिस जीवन-प्रणाली का अर्थात् अहिंसा प्रणाली का अंगीकार एक व्यक्ति भी कर सकता है, तो क्या व्यक्तियों के समूह या समूचे राष्ट्र नहीं कर सकते? मनुष्यों की ऐसी धारणा होती है कि हमारा उद्देश्य पूरी तरह सफल नहीं होगा, इसलिए मार्ग आरम्भ करने में हिचकते हैं। हमारी प्रगति में यह वृत्ति ही सबसे बड़ा विघ्न है। एक ऐसा विघ्न, जिसे हर एक मनुष्य, अगर वह चाहे तो, दूर कर सकता है। (लिबर्टी, लंदन 1931)

—गांधी

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक
वर्ष : 39, अंक : 18, 01-15 मई, 2016

संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595

कार्यकारी संपादक
डॉ.योगेन्द्र यादव

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	पांच रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India

विज्ञापन दर
पूरा पृष्ठ : 2000 रुपये
आधा पृष्ठ : 1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ : 500 रुपये

इस अंक में...

1. संपादकीय... 2
2. गांधीजी और नयी पीढ़ी-2 3
3. तरुणों के लिए विधायक क्रान्त-दर्शन 6
4. मेरी जीवन-निष्ठा 8
5. गाँवों पर शहर की विलासिता का प्रभाव 9
6. आजाद देश के पराधीन बच्चे 11
7. लड़ाई, पढ़ाई साथ-साथ 12
8. गैस्ट्रोन्यूरोसिस : कारण और उपचार 14
9. शिव विजय भाई से बातचीत... 15
10. गाजर के औषधीय गुण 18
11. एक क्रांति मचलने वाली है 20

सम्पादकीय

हर व्यक्ति के जीवन में व्यक्तिगत आचरण का महत्त्व होता है। किन्तु जो व्यक्ति समाज सेवा के क्षेत्र में उतर जाता है, उसके आचरण पर पूरे समाज की दृष्टि होती है। इसी कारण उसकी दिनचर्या से लेकर हर चर्या व्यवस्थित होनी चाहिए। उसकी करनी और कथनी में अंतर नहीं होना चाहिए। दोनों एक होना चाहिए। यानी जो वह कहे, उसका खुद आचरण करे और जो आचरण करे, उद्दात रूप में उसी का संवाद करे। अन्यथा जनता में वह स्वीकार नहीं होता है। समाज उसे संशय की दृष्टि से देखती है। ऐसे में समाज की ओर से उसे कोई मदद नहीं मिलती है। समाज वस्तुतः दो ही बातों पर ध्यान देता है। उसकी रोटी और बेटी दोनों सुरक्षित रहनी चाहिए। कहने का मतलब यह है कि यदि वह घर पर न हो, तब भी समाज सेवक को उतना ही सम्मान मिले, जितना उस घर में मालिक के रहने पर मिलता है। यदि आज के युग के आधार पर बात करें, जब न जाने कितने समाज सेवकों ने समाज के साथ छल किया है, उसे पुरुष की अनुपस्थिति में वहाँ जाना ही नहीं चाहिए। यदि जाता भी है, तो उसे घर के बाहर जहाँ सबकी दृष्टि पड़ सके, वहा बैठना चाहिए। वरना यह समाज उसके बारे में नाना प्रकार की बातें करने लगेगा। इसी प्रकार की नाना प्रकार की कठिनाइयाँ समाज सेवकों के सामने आती हैं।

महात्मा गांधी ने समाज एवं समाज सेवकों के बीच पवित्रता बनी रहे, इसी कारण एकादश व्रत का प्रावधान किया था। जो भी समाज सेवक एकादश व्रत का पालन करता है। उसकी कथनी और करनी का अंतर समाप्त हो जाता है। वह अपने आचरण या अनुभव के अनुरूप ही संवाद करता है। अनर्गल संवाद वह कर ही नहीं सकता। हर गृहस्थ को अपनी रोटी और बेटी सुरक्षित दिखे, इसके कारण ही महात्मा गांधी ने ब्रह्मचर्य की अवधारणा हर समाज सेवक के लिए निर्धारित की थी और उसकी विस्तृत व्याख्या करके यह स्पष्ट शब्दों में बता दिया था कि मन के स्तर तक उसका पालन होना चाहिए। जिस व्यक्ति के मन ब्रह्मचारी नहीं होता, जरा सी अनुकूल परिस्थिति आने पर वह पतित हो जाता है, जिसका खामियाजा नये समाजसेवकों को भुगतना पड़ता है। उन पर लोग सहसा विश्वास नहीं करते। उनका विश्वास जीतने में उसे महीनों लग जाते हैं। एक दूसरे प्रकार के आचरण की बात भी महात्मा गांधी ने की है। उनका साफ कहना था कि अपने उद्देश्य की प्रतिपूर्ति के साथ-साथ समाज के हर तबके को आपकी समाज सेवा का लाभ कैसे मिले? इस पर भी आपको विचार करना चाहिए। इसके लिए उन्होंने दो प्राथमिक उपाय भी बता दिये थे कि आप बच्चों की शिक्षा और समाज के स्वास्थ्य के प्रहरी बन जायें, तो समाज का हर बन्दा आपसे जुड़ जायेगा। फिर आपके उद्देश्य पूर्ति में पूरा समाज सहभागी होगा। लेकिन उसके विकास और बेहतरी में आपको सहभागी होना पड़ेगा।

आपका आचरण ही युवाओं को आकर्षित करता है। यदि आपके आचरण में त्याग एवं समाज कल्याण के कारक उसे दिखायी देंगे, तो वह भी अपने जीवन को तदनुरूप ढालने की कोशिश करेगा। यानी एक इन्सान बनने की कोशिश करेगा। इसलिए प्रत्येक समाज सेवक को अपना आचरण सबसे छोटे बच्चे पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा, यह ध्यान में रखकर करना चाहिए। इससे वर्तमान के साथ-साथ भविष्य भी बेहतर बन सकेगा।

–डॉ. योगेन्द्र यादव

गांधीजी और नयी पीढ़ी-2

❑ गुणवंत शाह

गांधीजी के जीवन का सबसे ज्यादा चमकदार पहलू यह है कि जिस बात को वह सही समझते थे, उस पर दृढ़-निश्चय से अमल करने का प्रयत्न करते थे। उनके जीवन के किसी छुटपुट मुद्दे को पकड़कर 'गांधीवादी-दर्शन' कहना खतरनाक है। अपने को गांधीवादी कहनेवाले लोग यही गलती कर रहे हैं।

आचार्य कृपालानी ने इसी हॉल में और इसी व्याख्यान माला के अन्तर्गत एक घटना का जिक्र किया है, जिससे गांधीजी को समझने में मदद मिल सकती है।

अमरीका में एक स्त्री बहुत बड़े बिक्री-भंडार (डिपार्टमेंट स्टोर) में सामान खरीदने गयी। वहाँ उसने एक कीमती हार खरीदा। इस भंडार के एक सेल्समैन से उसने किसी दूसरी अच्छी दूकान का पता पूछा और वहाँ पहुँची। दूकान में उसे वैसा ही हार नजर आया जैसा वह खरीद चुकी थी कौतूहलवश उसने हार की कीमत पूछी तो पहलेवाले हार से पन्द्रह डालर कम बतायी गयी। इस दूकान से कुछ चीजें खरीदने के बाद जब पैसे देने लगी तो पता लगा कि बटुआ गायब है। वह बहुत परेशान हुई इतने में ही पहलेवाले भंडार का सेल्समैन वहाँ आया और उसने उसका बटुआ उसे सौंप दिया। इसी सेल्समैंन ने उसे हार बेचा था। यह देखकर वह हैरान हो गयी और उसने सेल्समैंन से पूछा, 'तुम लोगों की कैसी नैतिकता है? एक तरफ तो तुमने हार के पन्द्रह डालर ज्यादा ले लिये, दूसरी तरफ बटुआ लौटाने आये हो। यह कैसा व्यवहार है?' सेल्समैन ने बिना हिचक के जवाब दिया, ''श्रीमतीजी, वह हमारी व्यावसायिक नैतिकता थी और यह सामाजिक नैतिकता है।''

लोगों ने नैतिकता का और जीवन का भी इसी तरह विभाजन कर दिया है। अगर हम जान लें कि गांधीजी ने जीवन का ऐसा विभाजन नहीं किया, तो हमारी गांधी-संबंधी अनेक समस्याएँ हल हो जायेंगी। अगर कोई आदमी चरखे के तकुवे से किसी की हत्या कर दे, तो वह 'गांधीवादी' हत्या नहीं हो जाती। अगर कोई तुम्हें ग्रामोद्योग का जहर दे दे तो वह अमृत नहीं बन सकता, अगर कोई डॉक्टर इंजेक्शन की सुई से किसी का काम तमाम कर दे, तो वह 'मेडिकल' हत्या नहीं कही जा सकती। कल को अगर खादी भंडार रिवाल्वर बेचने लगे, तो वे रिवल्वर अहिंसक नहीं हो जायेंगी।

अपने नौजवान दोस्तों से मैं निवेदन करता हूँ कि गांधीजी की पुस्तक 'अनासक्ति योग' की प्रस्तावना दो बार पढ़ें। उसमें एक वाक्य ऐसे गद्य का उदाहरण है जो सरल है, प्रभावशाली है, व्यावहारिक अनुभवों का परिणाम है और सत्य को व्यक्त करता है, ''कर्मों का त्याग करनेवाला गिरता है, फल का त्याग करनेवाला चढ़ता है।''

गीता पर बहुत सारे भाष्य लिखे गये हैं। लेकिन गांधीजी के सिवा किसी ने भी दावा नहीं किया कि उसने गीता के उपदेशों का चालीस साल अनुसरण करने के प्रयत्नों के बाद अपना भाष्य लिखा है। यह छोटी बात नहीं कि गांधीजी ऐसा दावा भी कर सकते हैं। और साथ ही ऐसी विनयशीलता भी प्रकट कर सकते हैं, जो किसी सत्यान्वेषी को ही शोभा देती है। यही विनयशीलता उनकी आत्म-कथा की प्रस्तावना में देखी जा सकती है। इस आत्म-कथा का 'सत्य के प्रयोग' नाम भी निराला है। इसका एक अंश इस प्रकार है :

''शुरू से ही मेरी मान्यता रही है कि जिस काम को एक आदमी कर सकता है, उसे सब कर सकते हैं। ...इसलिए मेरे प्रयोग खानगी तौर पर नहीं हुए हैं। मैं यह दावा करता कि मेरे प्रयोग अन्तिम प्रमाण हैं या अचूक हैं। ...मैं आशा करता हूँ और कामना करता हूँ कि आगे के अध्यायों में जो सलाहें बिखरी हुई हैं, उन्हें कोई प्रमाण न माने। जिन प्रयोगों का मैंने वर्णन किया है, उन्हें केवल उदाहरण समझा जाय और इनको ध्यान में रखकर प्रत्येक जन अपनी-अपनी रुझान और क्षमता के अनुसार अपने-अपने प्रयोग करे। ...जो कुछ भी कुत्सि बातें कहने लायक हैं, उन्हें न तो मैं छिपाऊँगा और न उन पर लीपा-पोती करूँगा। मैं पाठकों को अपने दोषों और अपनी त्रुटियों से पूरी तरह परीचित कराने का जतन करूँगा। मेरा अभिप्राय तो सत्याग्रह विज्ञान के प्रयोगों का वर्णन करना है, यह बताना नहीं कि मैं कितना भला हूँ। ...मेरे जैसे सैकड़ों लोग चाहे मर जायँ, किन्तु सत्य की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। मेरे जैसी गलतियाँ करनेवाले मनुष्य को परखने के लिए सत्य की मर्यादा बाल बराबर भी नहीं डिगनी चाहिए।''

आत्म-कथा का एक भी पृष्ठ ऐसा नहीं जिसमें सर्वोत्कृष्ट पारदर्शिता नजर नहीं आती हो। आज यहाँ जमा होनेवाले हम सब लोग तनिक सोचें कि हमारे में से कितने जन ऐसे हैं जो पिछले चौबीस घंटों की घटनाएँ सबके सामने जाहिर कर दें और कुछ भी न छिपायें। लोग सिर्फ काला धन ही नहीं छिपाते, और भी ऐसी बातें छिपाते हैं जिन्हें छिपाने की जरूरत नहीं। अगर हम अपनी जिन्दगी की परतें उधेड़ें, और उनकी होशियारी से छानबीन करें, तो हमको पता लगेगा कि छिपाने लायक बातों की संख्या जाहिर करने लायक बातों से ज्यादा है। जो लोग नामवर हैं, वे भी भरसक

जतन करते रहते हैं कि जैसा उन्हें होना चाहिए वैसा नजर आयें, न कि अपनी असली रूप में। लेकिन गांधीजी ऐसे नहीं थे। उनके मन में तो यही तड़प थी कि समाज के सामने अपना असली रूप रखें। इसी कारण अपने जीवन के अन्तिम दिनों में उन्होंने मनुगांधी से कहा था, ''अगर मैं बीमार होकर खाट पर पड़ा-पड़ा मर जाऊँ तो तू दुनिया को जता देना कि मैं नकली महात्मा था।'' शायद इसी तीखी तड़प की वजह से उन्होंने एक बहुत ही विवादास्पद प्रयोग किया था। वह अपनी पुत्री के समान मनु के साथ एक पलंग पर नंगे सोते थे। उनके इस प्रयोग पर अनेक प्रमुख जनों ने ग्लानि प्रकट की थी। अनेक अन्य लोगों ने इसका मजाक उड़ाया था। विनोबाजी अपनी जवाबी राय इन चन्द शब्दों में गांधीजी को बतायी थी, ''क्या यह सिद्ध करना जरूरी है कि मिट्टी तो मिट्टी ही होती है?'' मेरा ख्याल है कि ऐसा कठिन प्रयोग उन्होंने इसलिए किया कि अगर यह प्रयोग अन्त में उनकी आशा के विपरीत सिद्ध हो जाता है तो वह तुरन्त ऐलान कर देते कि जिसे लोग महान पुरुष समझते थे, वह वास्तव में महान नहीं निकला। अपना असली रूप जाहिर करने की यही उनकी तीखी तड़प थी। गांधीजी के बाद की दो आत्म-कथाओं में यही तड़प नजर आती है। एक तो बट्रेण्ड रसल की आत्म-कथा है, जिसमें उन्होंने बिना किसी लीपा-पोती के अपना जीवन खोलकर दिखा दिया है। दूसरी आत्म-कथा बर्मा के पूर्वकालीन प्रधानमंत्रीद ऊ न की है जिसका नाम है—'ऊ नू : द सैटरडेज सन' (ऊ नू : शनिवार का सूर्य)। लेकिन इस मामले में गांधीजी की होड़ कोई नहीं कर सकता। गांधीजी का अनोखा चरित्र यह था कि वह अपनी गलतियों को हिमालय जैसी बड़ी और अपनी उपलब्धियों को सूक्ष्म कण जैसी छोटी बता सकते हैं। गांधीजी के जीवन के इस बड़े आयाम को नयी पीढ़ी को समझाया जा सकता है। यह काबलियत उन्हीं में थी कि अपने करोड़ों मित्रों और देशवासियों के सामने अपना असली रूप प्रकट कर देते थे। अविभाजित भारत के साधारण जन के लिए पचास साल तक गांधीजी का जीवन खुली किताब के समान था। यह खुली किताब कालान्तर में भारत का इतिहास बन गयी।

गांधीजी का तीसरा पहलू नयी पीढ़ी को चुम्बक की तरह आर्षित कर सकता है। यह था जीवन का उनका क्रान्तिकारी ढंग, जो सत्याग्रह से ओत-प्रोत था। 'हरिजन' का पहला अंक 11 फरवरी 1933 को पुणे से प्रकाशित हुआ था। इसमें एक प्रश्न छपा था कि जो किसी ने गांधीजी से पूछा था, ''क्या उपवास दबाव डालने का एक तरीका नहीं?'' इसके जवाब में गांधीजी ने लिखा था, ''मेरी धारणा है कि उपवास के बिना प्रार्थना नहीं हो सकती और प्रार्थना के बिना सच्चा उपवास नहीं हो सकता। मेरा उपवास व्यथित आत्मा की प्रार्थना थी।'' गांधीजी ने जिस तरह के उपवास का प्रतिपादन किया था, उसकी वर्तमान दुर्गति के संदर्भ में गांधीजी का यह कथन ध्यान देने लायक है। गांधीजी ने 1976 वि0सं0 (1920 ई0) की पूर्णिमा की रात को डाकोर में चालीस हजार तीर्थयात्रियों की सभा में जो भाषण दिया था, उसके शब्द प्रत्येक नवयुवक के हृदय में प्रवेश कर सकते हैं। उन्होंने कहा था :

''जरूरत पड़े तो मैं अपने पुत्र से भी असहयोग कर सकता हूँ। इसी तरह ब्रिटिश साम्राज्य से भी असहयोग कर सकता हूँ। ...यह साम्राज्य बातों में तो कुछ नहीं कहता, लेकिन कार्रवाई ऐसी करता है जैसी उसने पंजाब में की। भगवान कृष्ण का भक्त होने के नाते मैं आपसे कहता हूँ कि आप लोग इस साम्राज्य के स्कूलों और अदालतों का बायकाट करें। ...आप केवल ईश्वर के बताये हुए मार्ग पर चलें। जिस घड़ी आप ऐसा करेंगे, उसी दम आपकी जंजीरें टूट जायेंगी।...

''असहयोग सोने का हथियार है, देवताओं का हथियार है। जब कभी आप लोग अन्याय होता देखें और कोई बुराइयों का पुतला नजर आये, तो उसे त्याग दें। श्रीकृष्ण ने हिन्दुओं को यह उपदेश दिया, पैगंबर मोहम्मद ने मुसलमानों को दिया और जन्दअवस्ता यही उपदेश परसियों को देती है। तुलसीदास ने नरम शब्दों में कहा है कि दुर्जनों की संगत मत करो। ...असहयोग दुर्भावना या घृणा से नहीं किया जाता। यह तो धर्म-प्राण जनों का धार्मिक कर्तव्य है। पिता और पुत्र का आपसी असहयोग उचित है, पति या पत्नी से तथा रिश्तेदारों से असहयोग कर्तव्य है।''

31 जनवरी 1922 को सूरत में अपने भाषण में गांधीजी ने कहा था : ''मान लो कोई जनरल डायर अपनी फौज लेकर हमारे सामने आ खड़ा होता है और बिना किसी चेतावनी के गोलियाँ चलाना शुरू कर देता है। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि अगर ऐसा हो जाय, तो उस वक्त भी मैं आप लोगों से ऐसी ही राजीखुशी से बातें करता रहूँ जैसे अभी कर रहा हूँ। साथ ही यह भी प्रार्थना करता हूँ कि आप लोग भी गोलियों की बौछार में इसी तरह शान्ति से बैठे रहें जिस तरह अभी बैठे हैं। अगर ऐसे मौके पर आपके कान और आपकी पीठ मेरी तरफ हो और आपकी छातियाँ उस तरफ हों जिधर से गोलियाँ आ रही हों और आप उनका स्वागत करें, तो गुजरात के लिए शान की चीज होगी। ...हालाँकि हरिजनों से हमारी नफरत कम हो रही है, फिर भी अभी तक हम उन्हें अपने सगे भाई मानने को तैयार नहीं। अगर किसी हरिजन को साँप काट ले, तो हमारे में से कितने लोग जहर चूसने को आगे आयेंगे?''

इन उद्धरणों के जरिये मैं सिर्फ यह बताना चाहता हूँ कि गांधीजी का सविनय अवज्ञा या असहयोग का हथियार महज विदेशी हुकूमत पर नहीं ताना गया था। उन्हें असहयोग की प्रेरणा प्रह्लाद से मिली होगी। गांधीजी ही

ऐसे इन्सान थे, जो जरूरत पड़ने पर खुद अपने-आप से भी विद्रोह कर सकते थे। 1932 में जब उन्होंने हरिजनों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र के विरोध में उपवास किया था, तब उन्होंने डॉ0 अम्बेडकर को लिखा था, ''आप तो जन्म से अछूत हैं, लेकिन मैं खुद अपनी मर्जी से अछूत बन गया हूँ।''

इसके कुछ ही दिनों बाद, जब पुणे से 'हरिजन' का प्रकाशन शुरू हुआ था, तब तक उन्होंने पहले अंक के लिए डॉ0 अम्बेडकर से संदेश भेजने का निवेदन किया था। लेकिन संदेश भेजने के बजाय डॉ0 अम्बेडकर ने खीझ भरा बयान दे डाला था। गांधीजी ने इसे 'हरिजन' में छाप दिया था और डॉ0 अम्बेडकर की खीझ के पक्ष में टिप्पणी लिख डाली थी।

गांधीजी का सत्याग्रह का हथियार किसी खास आदमी पर चलाने के लिए नहीं था; बल्कि किसी आदमी या आदमियों के समूह की बुराइयों के लिए था। दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने जनरल स्मट्स से डटकर लोहा लिया था लेकिन गांधीजी की सतरवीं वर्षगाँठ पर जनरल स्मट्स ने बिल्कुल खुले दिल से गांधीजी के प्रति आदर प्रकट किया था। उनके साथ अंग्रेजों की दोस्ती का भी यही रहस्य था कि सत्याग्रह के दौरान उनका रवैया निर्लेप रहा था।

जहाँ कहीं अन्याय, शोषण और आतंक दिखायी देता, वहाँ गांधीजी की चेतना शक्ति पूरी ताकत से सक्रिय हो जाती थी। ऐसे मौकों पर वह यह नहीं सोचते थे कि कोई काम वह अकेले ही पूरा कर सकेंगे। इसे मैं 'जटायु वृत्ति' कहता हूँ। जटायु जानता था कि वह रावण को नहीं हरा सकेगा। लेकिन इसका यह मतलब नहीं था कि वह बिना लड़े रावण को सीता हर ले जाने दे। ''मेरी मृत्यु के बाद ही रावण ऐसा कर सकता है।'' गांधीजी के देहान्त के बाद यह 'जटायु वृत्ति' गायब हो गयी है और इसी कारण भ्रष्टाचार बढ़ा है। भ्रष्टाचार सभी की निगाह में है, मगर सब लोग लाचार हैं और कहते हैं ''हम क्या कर सकते हैं?'' गांधीजी ने ऐसी लाचारी को कभी कबूल नहीं किया।

क्या यह वही गांधी था, जिसे बंबई की खफीफा अदालत में मामी बाई के मुकदमे की पैरवी करते वक्त लग रहा था मानो सारी अदालत उसके गिर्द चक्कर काट रही है? क्या यह वही गांधी था, जिसके लिए डरबन के अखबारों ने 'अनवैल्कम विजिटर' (अवांछित आगन्तुक) की सुर्खियाँ लगायी थीं, क्योंकि जिस दिन उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में कदम रखा था, उसी दिन उन्होंने अपनी पगड़ी उतारने से इन्कार कर दिया था। क्या यह वही गांधी था, जिसे डरबन से प्रीटोरिया की यात्रा के बीच मैरित्सबर्ग स्टेशन पर कड़ाके की सर्दी में ट्रेन से जबर्दस्ती खींचकर उतार दिया गया था? क्या यह वही गांधी था जिसने दादा अब्दुल्ला का मुकदाम अदालत से बाहर निबटाकर 'सच्ची पैरवी' शुरू की थी। क्या यह वही गांधी था जिसने मूत्र से भरे बर्तन को अनिच्छा से हाथ में थामे सीढ़ियों से उतरती कस्तुरबा से झगड़ा किया था और उसे दरवाजे तक घसीटकर घर के बाहर निकल जाने को कहा था? क्या यह वही गांधी था जिसने चम्पारण, खेड़ा, बारडोली और धारा सभा में सत्याग्रह का डंका बजाया था और भारत की जनता की आत्मा को जगाया था? क्या यह वही गांधी था जो बचपन में अँधेरे में जाने से डरता था? हाँ, यह वही गांधी था जिसने सत्यमय जीवन से अपनी नैतिक शक्ति बढ़ायी थी और जिसने दुनिया की सबसे ज्यादा शक्तिशाली सरकार को 'भारत छोड़ो' की ललकार देकर जड़ से हिला दिया था।

देश में फैली गरीबी से द्रवित होकर उन्होंने अपनी पोशाक और रहन-सहन और खान-पान का ढंग बदल दिया। उनके जैसा कट्टर क्रान्तिकारी ही ऐसा कर सकता था। अपने सारे कार्यकलापों में उन्होंने भारतीय संस्कृति में श्रेष्ठतम तत्त्वों का समावेश कर लिया था। यही उनका निरालापन था। उन्होंने कताई जैसे मामूली काम को भी 'कातन-यज्ञ' की संज्ञा देकर उदात्त बना दिया था। यरवडा जेल को 'यरवडा मंदिर' बखान कर उन्होंने जेल-जीवन को महत्त्वपूर्ण बना दिया था। इसी तरह जेल जाना 'जेल-यात्रा' बन गया और सार्वजनिक सभा 'प्रार्थना-सभा' बन गयी। शतरंज के चतुर खिलाड़ी की तरह उन्होंने इन परिभाषाओं के द्वारा भारत के साधारण जन के हृदय के भीतर छिपे सांस्कृतिक तत्त्वों की शक्ति को जगा दिया था। करीब पचास वर्षों तक उन्होंने भारत के जनसमुदाय को जो शिक्षा दी, उसकी परिणति 'भारत छोड़ो' की पुकार के रूप में हुई और तब गांधीजी की आवाज भारत की आवाज बन गयी और वह आवाज उस जमाने की नयी पीढ़ी ने सुनी। उस युग की युवा पीढ़ी के अग्रणी प्रतिनिधि जवाहरलाल नेहरू ने कहा था : ''जिस जगह वह (गांधीजी) बैठते थे, वह मंदिर बन जाती थीं और जहाँ कहीं वह जाते थे, वह जगह पुनीत हो जाती थी।''

गांधीजी की जीवन-चर्या में अहिंसा के प्रति निष्ठा के साथ-साथ रहन-सहन का क्रान्तिकारी ढंग भी उछलता हुआ नजर आता है। उनके जीवन में मानवता के उच्चतम तत्त्वों की खोज से उत्पन्न संघर्ष भी देखा जा सकता है। उनके जीवन की छोटी-से-छोटी घटना में भी क्रान्ति की पदचाप सुनायी देती है। यह आहट परेड करनेवाले सैनिकों के बूटों की थपथपाहट से अलग सुनायी देती है। कभी-कभी ऐसा होता है कि लकड़ियाँ काटने की क्रिया को तो 'क्रांतिकारी' समझा जाता है, मगर किसी बागबान का शान्तिपूर्ण और चिरकालिक कार्य क्रान्तिकारी नहीं समझा जाता। गांधीजी हरेक समस्या की जड़ तलाश करते थे। ❑

विचार-सौरभ

तरुणों के लिए विधायक क्रान्त-दर्शन

❑ विनोबा

(यहाँ प्रस्तुत है, प्रथम व्यक्तिगत सत्याग्रही विनोबाजी द्वारा आजादी के पहले का एक क्रान्तिकारी व्याख्यान —सम्पादक)

तरुण शब्द का अर्थ क्या है? उसका अर्थ इस शब्द से ही प्रकट है। शब्द मुझसे बातें करते हैं। वे मुझे अपनी खूबी बता देते हैं। तरुण शब्द स्वयं कहता है कि आप समाज के तारक हैं। तरुण यानी तारक। तारण करनेवाला। इसलिए तरुण पर बहुत कुछ अवलंबित है। मुझे तो तरुणों से बड़ी आशा है। मैं आपसे क्या अपेक्षा करता हूँ? मुझे आपसे कहना चाहिए कि मुझे आपसे क्रांति से कम अपेक्षा की नहीं है। हमें सार्वभौम-क्रान्ति की जरूरत है। जीवन के समस्त क्षेत्र में हम क्रान्ति करना चाहते हैं। इसीलिए मुझे आपसे सार्वभौम और जीवनव्यापी क्रान्ति की आशा हे। आज के नेताओं ने आपको क्रान्ति का मार्ग बता दिया है। फिर भी मैं मानता हूँ कि यदि क्रान्ति आयेगी तो वह युवकों और विद्यार्थियों के द्वारा ही आयेगी। तरुणों का यह लक्षण है कि वे नये-नये विचारों को जन्म देते हैं और वीरता के साथ उस पर अमल करते हैं। इसलिए मैं मानता हूँ कि आपको नये विचारों का साथ देना चाहिए और प्रत्यक्ष क्रान्ति कर दिखाना चाहिए।

परन्तु क्रान्ति केवल घोषणाओं से नहीं होती। इसके लिए हर दिशा में प्रयत्न करना पड़ता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन करना पड़ता है। मैं देखता हूँ कि भारत के युवकों में उत्साह तो बहुत है और मैं इस उत्साह को पसन्द करता हूँ। परन्तु उत्साह को मैं युवकों का बहुत बड़ा गुण नहीं मानता। वह तो एक साधारण लक्षण है। एक बार किसी संस्था ने मुझसे सन्देश माँगा। उस संस्था का नाम था—'तरुण उत्साही मंडल'। मैंने कहा, 'तरुण' और 'उत्साही' यह कैसे है? इसमें द्विरुक्ति है। 'तरुण' शब्द में उत्साह आ ही गया है। बूढ़ों के लिए अगर कहा जाय कि 'उत्साही वृद्ध' तो बात कुछ समझ में आने लायक होगी। इनके लिए विशेषण की जरूरत है। बूढ़ों को उत्सहा की जरूरत है। परन्तु तरुणों की धीरता या धीरज की जरूरत होती है। जिसमें उत्साह नहीं है, उसे तरुण कह ही नहीं सकते। धीरता उसमें इतनी चाहिए कि जिस काम को हाथ में ले, उसे पूरा करके ही रहे। इसीको सातत्य कहते हैं। तरुणों में धीरता होगी, तभी वे क्रांति कर सकेंगे।

क्रान्ति के लिए क्रान्त-दर्शन की जरूरत होती है। अपने आस-पास की परिस्थिति चीर करके उस पार छिपी हुई चीज को स्पष्ट देख सकने की और जो चीज दीखेंगी, उसे कार्यान्वित करने की हिम्मत को क्रान्त-दर्शन कहते हैं। क्रान्त-दर्शन होगा तभी क्रान्ति हो सकेगी। क्रान्त-दर्शन के लक्षण क्या हैं, यह मैं आपको बताना चाहता हूँ। आप मुझसे लम्बे-चौड़े भाषण की नहीं, मार्गदर्शन की अपेक्षा करते हैं। और मुझे भी लगता है कि इस विषय में मैं आपका मार्गदर्शन कर सकता हूँ।

साम्ययोग

क्रान्त-दर्शन का पहला लक्षण है—साम्ययोग। विद्यार्थियों के लिए साम्ययोग का आचरण कठिन नहीं है। हर प्रकार के भेदभाव को हमें मिटा ही देना चाहिए। जो पुराने विचारों में उलझे हुए हैं, पुराने संस्कारों में पले हैं, भेदभावों की आदतों में जकड़े हुए हैं, उनमें अभेद-भावना का निर्माण करना कठिन है। परन्तु विद्यार्थियों के लिए यह बात असंभव नहीं। विद्यार्थी के सामने जीवन का नवीन आदर्श होता है और उसमें यह शक्ति होती है कि अपने विचारों के अनुसार आचरण भी कर सके, जिसमें यह हिम्मत नहीं है, वह न तो तरुण है और न बाल। मुझसे एक बार किसी ने बाल-शब्द का अर्थ पूछा। मैंने कहा : जो बलवान् है, जिसके अन्दर हिम्मत है, जो अपनी इच्छा के अनुसार काम कर सकता है, वह बाल है। आप विचारों से ताजा हैं। इसलिए आप साम्ययोग का आचरण अवश्य कर सकते हैं। हिन्दुओं को बड़ा न मानें और मुसलमानों को छोटा न समझें। हरिजन को नीचा और सवर्णों को ऊँचा न समझें। इस प्रकार सारे भेदभावों को भुला दीजिये। विद्यार्थी तो बचपन से ही समभावी होते हैं। बच्चा पैदा होता है, तब किसी प्रकार का भेदभाव वह जानता ही नहीं। परन्तु बाद में माता-पिता ही उस पर अनेक प्रकार के भेदभाव के संस्कार डालते हैं। आपको इन संस्कारों से अलिप्त रहने का प्रयत्न करना चाहिए। आप किसी को भी ऊँचा-नीचा न समझें। आज हम ब्राह्मणों को ऊँचा समझते हैं और हरिजनों को नीचा। ऊपरवालों की ठोकरें खाते हैं और नीचेवालों को ठुकराते हैं परन्तु आप न तो किसी की ठोकरें खायें, न किसी को ठुकरायें। यह साम्ययोग है। साम्ययोगी किसी को भी अपने से नीचा या ऊँचा न समझें। सारे भेदभावों को अपनी बुद्धि के अन्दर से निकाल दें तो स्वराज्य दो मिनट में मिल सकता है। स्वराज्य के मिलने में देरी का कारण हमारे वे भेदभाव ही हैं। हिन्दू-मुसलमानों के भेद के बारे में हम अंग्रेजों को दोष देते हैं। परन्तु अछूतों के बारे में क्या हम ऐसा कह सकते हैं? क्या वे इसमें रुकावट डाल रहे हैं? इस प्रकार अपनी भूल के लिए अंग्रेजों को दोष देने का अर्थ अपनी जिम्मेदारी को टालना। इस भूल को समझ लेना और ठीक कर लेना क्रान्त-दर्शन का पहला लक्षण है।

श्रम-निष्ठा

दूसरा लक्षण है श्रमनिष्ठा। मैं जानता हूँ और मेरा इतिहास का अध्ययन भी यही कहता है कि संसार में जितने भी विचार-प्रवाह और वाद जारी हैं, उन सबकी जड़ में एक ही वृत्ति काम कर रही है और वही सारी विषमता की जड़ है। यह वृत्ति है खुद काम न करना और दूसरे के परिश्रम का लाभ उठाना। इसलिए मैं विद्यार्थियों से अपेक्षा रखता हूँ कि वे परिश्रम की प्रतिष्ठा समझें और लोहार, बढ़ई तथा भंगी का काम वे खुद करें। इस प्रकार के किसी भी काम को ऊँचा या नीचा न समझें। मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है कि कांग्रेस के नेता भी इस बात के महत्त्व को अभी नहीं समझे हैं। पहले गांधीजी ने सुझाया था कि कांग्रेस की सदस्यता शुल्क के चार आने के स्थान पर सूत लिया जाय। इसमें इनका हेतु यही था कि पैसे के स्थान पर श्रम की प्रतिष्ठा स्थापित हो। इसके लिए एक समिति भी नियुक्त की गयी थी। परन्तु उसका कुछ भी परिणाम नहीं निकला। चार आनेवाली बात ही कायम रही। आप चार आने के बजाय कांग्रेस की सदस्यता का शुल्क भले ही दो आने या दो पैसे भी रख सकते हैं। परन्तु जब तक सदस्यता का शुल्क पैसा रहेगा, तब तक पैसेवालों की प्रतिष्ठा कायम रहेगी। श्रम की प्रतिष्ठा यदि प्रस्थापित करनी है, तो स्वयं हमें परिश्रम करना शुरू कर देना चाहिए।

लोग कभी-कभी पूछते हैं कि हर व्यक्ति के लिए परिश्रम अनिवार्य क्यों किया जाय? मैं पूछता हूँ कि हर आदमी को भोजन करना क्यों जरूरी हो? यों भी लोग पूछते हैं कि ज्ञानी को श्रम का काम क्यों करना चाहिए? वह भाषण क्यों न दे? मैं पूछता हूँ कि ज्ञानी भी भोजन क्यों करे? वह ज्ञानामृत से क्यों न संतुष्ट हो ले? उसे खाने-पीने और सोने की भी जरूरत क्यों हो? यदि हमारे लिए सोना और खाना जरूरी है तो शरीर-श्रम भी जरूरी है ही। जिस दिन हम खाने के बजाय दूसरी किसी चीज से काम चला लेंगे, उस दिन मजदूरी के बदले में किसी दूसरी चीज से काम चल सकेगा। परमेश्वर ने सबको दिमाग दिया है और हाथ भी दिये हैं। यदि वह चाहता तो ज्ञानी को केवल मस्तक-दिमाग और मजदूर को केवल हाथ दे सकता था। उसने कुछ लोगों को केवल सिरवाले और कुछ लोगों को केवल हाथवाले बनाया होता। परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। क्योंकि वह चाहता है कि हर आदमी विचार भी करे और काम भी करे। काम से मतलब है उत्पादक परिश्रम। जो उत्पादक परिश्रम नहीं करता, वह चोरी करता है।

अन्याय का प्रतिकार

तीसरा लक्षण बड़ा महत्त्वपूर्ण है। तरुणों को, युवकों को एक व्रत लेना चाहिए और वह है अन्याय का प्रतिकार। जहाँ-जहाँ भी अन्याय दीखे, वहाँ-वहाँ हर हालत में उसका प्रतिकार करना ही चाहिए। सामाजिक और राजनैतिक सब प्रकार के अन्यायों के प्रतिकार का व्रत आपको लेना चाहिए।

परन्तु इस व्रत के पालन में हमको अहिंसा का उपयोग करना होगा। क्योंकि हिंसा से अन्याय का प्रतिकार हो ही नहीं सकता। इस युद्ध ने यह बात सिख कर दी कि अब मानवता के लिए अहिंसा के सिवा कोई चारा नहीं है। क्योंकि इस युद्ध में एक नया तत्त्व सामने आया है—अनन्यशरणता। मरनेवाले शत्रु पर शर्त लगायी जाती है कि वह बिला शर्त शरण आ जाय। बड़े-बड़े राष्ट्र भी, जिनके पास करोड़ों की सेना होती है, इस प्रकार बिना शर्त शरण जाते हैं। क्योंकि वे शस्त्र के आधार पर लड़ते हैं। जो शस्त्रों के बल पर लड़ते हैं, वे अपने से बलवान् शत्रु के सामने झुक जाते हैं। जहाँ शस्त्र-शरणता है, उसके साथ अन्यशरणता भी लगी हुई है। किन्तु जो शस्त्रों पर नहीं, अपनी आत्मा पर विश्वास करता है, वही अंत तक लड़ते रहने की प्रतिज्ञा कर सकता है। अहिंसा के बल पर एक छोटा-सा घच्चा भी ऐसा संकल्प कर सकता है। अहिंसा के बल पर ही हम अन्याय के प्रतिकार के व्रत का पालन कर सकते हैं।

परन्तु इस व्रत के पालन में हमको अहिंसा का उपयोग करना होगा। क्योंकि हिंसा से अन्याय का प्रतिकार हो ही नहीं सकता। इस युद्ध ने यह बात सिख कर दी कि अब मानवता के लिए अहिंसा के सिवा कोई चारा नहीं है। क्योंकि इस युद्ध में एक नया तत्त्व सामने आया है—अनन्यशरणता। मरनेवाले शत्रु पर शर्त लगायी जाती है कि वह बिला शर्त शरण आ जाय। बड़े-बड़े राष्ट्र भी, जिनके पास करोड़ों की सेना होती है, इस प्रकार बिना शर्त शरण जाते हैं। क्योंकि वे शस्त्र के आधार पर लड़ते हैं। जो शस्त्रों के बल पर लड़ते हैं, वे अपने से बलवान् शत्रु के सामने झुक जाते हैं। जहाँ शस्त्र-शरणता है, उसके साथ अन्यशरणता भी लगी ही हुई है। किन्तु जो शस्त्रों पर नहीं, अपनी आत्मा पर विश्वास करता है, वही अंत तक लड़ते रहने की प्रतिज्ञा कर सकता है। अहिंसा के बल पर एक छोटा-सा घच्चा भी ऐसा संकल्प कर सकता है। अहिंसा के बल पर ही हम अन्याय के प्रतिकार के व्रत का पालन कर सकते हैं।

परन्तु इन दिनों मैं अखबारों में पढ़ता हूँ और लोगों से जबानी भी सुनता हूँ कि अब तक हमने अहिंसा को बहुत आजमाकर देख लिया। अब तो तोड़-फोड़ का कुछ प्रयोग करने का समय आया है। सन् 1942 में हमने इस दिशा में कुछ प्रयोग किया भी। परन्तु मैं आपसे स्पष्ट संकेत कर देना चाहता हूँ कि जो लोग इस तरह की बातें आपसे कहते हैं, वे आपको कम-से-कम सौ वर्ष और गुलाम रखना चाहते हैं। यदि आपको स्वतंत्रता चाहिए तो आपके पास वह शक्ति है, जिसके बल पर आप स्वतंत्र हो सकते हैं। हमारी अगली लड़ाई 1942 की लड़ाई से भी बड़ी होगी। परन्तु वह अहिंसक होगी। उसका स्वरूप राष्ट्रव्यापी हड़ताल का होगा। हमें राष्ट्रव्यापी हड़ताल करनी होगी। क्रान्ति उसी से होगी। इसके लिए हमें जनता की सेवा करनी होगी। तब वाइसराय के आर्डिनेन्स की भाँति हमारी

शेष पृष्ठ 10 पर...

विरासत

मेरी जीवन-निष्ठा

❑ दादा धर्माधिकारी

मेरे जीवन में व्यसन या आदत नाम की चीज नहीं है। परन्तु मनुष्य का मुझे व्यसन है, जिस व्यक्ति को मैं असीम प्यार करता हूँ, उसके लिए पागल हो जाता हूँ। उसके जीवन के साथ समरस हो जाता हूँ। उसका बहुत सूक्ष्म अनिमिष ध्यान रखता हूँ। मैंने अपने पुरुष मित्रों को अत्यन्त उत्कट भाव से और दिलोजान से प्यार किया है। यह प्रेम व्यक्तिगत रहा है। मेरी उत्कटता इतनी रहती है कि मुझे उनकी लगन लग जाती है। बड़े-छोटे का भेद लगभग काफूर हो जाता है। सहोदर भाई और तनुज पुत्र से भी अधिक मैं उन्हें प्यार करने लगता हूँ। उस प्रेम के साथ किसी दूसरे प्रयोजन का गठबन्धन नहीं रहता है। उस व्यक्ति के लिए मेरा प्यार एक बला लगती होगी। उसके चित्त पर उसका बोझ भी रहता होगा। लेकिन मुझे उसकी सुध नहीं रहती।

जहाँ प्रेम हो वहाँ सेवा, कर्त्तव्य, चाकरी इत्यादि दूसरी प्रेरणाओं के लिए अवकाश ही नहीं रह जाता। परन्तु समाज में सभी सम्बन्धों के मूल में इतना असीम और अविचल प्रेम सदैव नहीं होता। अनेक प्रकार के निमित्तों से विविध अधिष्ठानें पर नानाविध सम्बन्ध निर्मित होते हैं। जीवन-व्यवहार की सिद्धि के लिए उन्हें निबाहना भी होता है। सम्बन्ध के साथ दो पक्ष आते हैं। जहाँ असीम प्रेम हो, वहाँ द्वैत का निरास होता है। अन्यथा प्रेममूलक सम्बन्धों में भी विशिष्टाद्वैत शेष रह जाता है, फिर दूसरे की तबीयत सँभालना वह प्रेम सिखाता है। अपने मन को मोड़कर दूसरे के साथ रहना मनुष्य सीख लेता है। इसमें मूल प्रेरणा प्रेम की ही होती है। लौकिक सत्ता या सम्पत्ति जैसी दीगर प्रेरणाओं के लिए गुंजाइश ही नहीं होती। दूसरे के मन रखने की जरूरत भी प्रेम के कारण ही होती है। प्रवाह प्राप्त स्नेह-सम्बन्धों में प्रवाह प्राप्त अपेक्षाएँ और दायित्व उत्पन्न होते हैं। उन अपेक्षाओं और दायित्वों को निबाहने की प्रेरणा भी प्रेम से ही मिलती है। एक-दूसरे से मिलने की आकांक्षा पूरी तरह प्रेमजन्य ही है।

जेल का एकान्तवास मुझे अत्यन्त अप्रिय लगता था। वह सबसे बड़ी और सख्त सजा मालूम होती थी। कारावास और उसमें फिर एकान्तवास। कल्पना भी अच्छी नहीं लगती थी। इसलिए कारागाह के निवास में मैं हमेशा संकल्प करता था, फिर बाहर निकलने पर एकान्त का अभ्यास करूँगा। लेकिन कारागार में किये अनेक शुभ संकल्पों की तरह इस संकल्प की भी परिसमाप्ति असफलता में हो जाती थी। एकान्त में मुझे भय की प्रतीति नहीं होती है, लेकिन एकान्त भाता नहीं, और मुआफिक भी नहीं आता। सच कहूँ अकेले खाना चोर जैसा लगता है न, अकेले जीना भी मुझे चोर जैसा ही लगता है। मेरी दृष्टि से यह दोष नहीं, गुण ही है।

मुझे एकान्त अप्रिय है, इसका मतलब यह नहीं कि सतत इर्द-गिर्द लोग बैठे हुए हों, या साथ में चौबीस घण्टे कोई चाहिए। ऐसा कत्तई नहीं। कुछ देर अकेले में बैठने की इच्छा भी होती है। लेकिन लोगों के सान्निध्य की, समीपत्व की आहट मिलती रहे। वरना उस एकान्त की परिणति शान्तता में होने के बदले शून्यता में हो जायेगी। ऐसी शून्यता एक प्रकार की नरीवता होती है, स्तब्धता होती है, सन्नाटा होती है। ऐसी शून्यता मुझे कष्टप्रद लगती है। अंधेरे में जैसे मनुष्य चकरा जाता है, कुछ सूझता नहीं, स्तब्धता में भी मेरे मन की सूझ-बूझ खो जाती है। शून्यता में जीवन का कोई चिह्न नहीं दीखता। उस शून्यता में मेरा दम घुटने लगता है।

1942 में जेल में हमारे परिवार से सम्बन्धित काफी लोग थे। मेरे भाई बल्ला और भैया थे। मेरे दामाद गंगाधर राव और उनके बड़े भाई भैय्या साहब तापसकर थे। मेरी बुआ के बेटे वामन राव चोरघड़े, जो मराठी के बड़े साहित्यिक हैं, थे। मेरे दो बड़े बेटे बालू और बबन भी एक-एक महीने के लिए जेल में बन्द कर दिये गये थे।

शुरू में नागपुर और बाद में बालाघाट जेल में मेरा रहना हुआ। जेल के जीवन में ईश्वर की सृष्टि के साथ ज्यादा आत्मीयता का सम्बन्ध आता था। पक्षी और वृक्षों के साथ नजदीकी आती है। ब्रह्म मुहूर्त पर कोकिल और नीलकण्ठ आवाज देने लगते थे, तब हृदय उमड़ आता था। सृष्टि के नये-नये रूप, हर क्षण उसमें होनेवाला बदलाव, नवजीवन की चमक, मेरे आकर्षण के विषय थे। हम व्यर्थ ही जीवन को लोकबद्ध, जमा हुआ, उबाऊ बना देते हैं। नदी, पहाड़, पेड़, पशु-पक्षी इस सबका विलक्षण आकर्षण बचपन से मुझे रहा है। अब भी वह कायम रहा है। जबलपुर में रहता हूँ तब शाम के समय घर के पिछवाड़े के आँगन में बैठता हूँ। एक इमली का वृक्ष सामने दीखता है। उसके साथ मेरी घनी मित्रता हो गयी है। तब मैं अकेला नहीं होता हूँ। मुम्बई में घर में बैठे-बैठे समुद्र का दर्शन होता है, चित्त व्यापक और प्रसन्न हो जाता है।

निसर्ग का सृजन मनोहारी है। लेकिन मनुष्य निर्मित चीजों की भी मेरे मन में →

गाँवों पर शहर की विलासिता का प्रभाव

❑ टॉल्सटॉय

सारे रूस में—रूस में ही क्यों, मैं समझता हूँ कि सारे संसार में ऐसा ही होता है। ग्रामीण उत्पादकों का धन व्यापारियों, जमींदारों, अफसरों और मिल-मालिकों के हाथ में चला जाता है। जिन्हें धन मिलता है, वे स्वभावतः उसका उपभोग करना चाहते हैं और उसका पूरा-पूरा उपभोग वे केवल नगर में कर सकते हैं। देहात में लोग एक-दूसरे से दूर-दूर रहते हैं, जिसके कारण धनवानों की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति कठिन होती है, क्योंकि वहाँ न तो कारखाने होते हैं, न बड़ी-बड़ी दूकानें, न बैंक, न होटल, न थियेटर, न मनोरंजन के विभिन्न साधन। इसके अलावा, धन से मिलनेवाला जो एक बड़ा सुख-अभिमान है, अर्थात् दूसरों को अपनी शान-शौकत से चकित करने और नीचा दिखाने की जो तृष्णा है, वह भी लोगों के दूर-दूर रहने के कारण गाँव में बड़ी कठिनाई से तृप्त हो पाती है। गाँव में भोग-विलास की वस्तुओं के पारखी नहीं होते। वहाँ ऐसे लोग नहीं होते, जिनकी आँखों में इन वस्तुओं से चकाचौंध पैदा की जाय। गाँव के मकान को चाहे जितना सजाइये, उनमें चाहे जितने चित्र और मूर्तियाँ लाकर रखिये, चाहे जितने गाड़ी-घोड़े और सौंदर्य-सामग्रियाँ जुटाइये, वहाँ उनकी प्रशंसा या उनसे ईर्ष्या करनेवाला कोई नहीं मिलेगा, क्योंकि किसान लोग इन चीजों के बारे में कुछ नहीं समझते। तीसरी बात यह है कि आत्मा की पुकार सुननेवाले और सामाजिक औचित्य की चिन्ता करनेवाले व्यक्ति को गाँव में विलासिता अरुचिकर ही नहीं, बल्कि संकटजनक भी प्रतीत होती है। जबकि दूध वहाँ के बच्चों को भी पीने को नसीब नहीं होता, हमारा उससे नहाना या पिल्लों को पिलाना बड़ा ही भद्दा और अरुचिकर प्रतीत होता है। इसी तरह जो लोग खाद से घिरी हुई कच्ची झोंपड़ियों में रहते हैं और जिनके पास आग जलाने के लिए लकड़ी भी नहीं होती, उनके बीच बड़े-बड़े मंडप बनवाना और बाग लगवाना कष्टकर तथा अस्वाभाविक मालूम होता है। मूर्ख किसान यदि अज्ञानवश इन सब चीजों को नष्ट कर दें, तो देहात में ऐसा कोई अधिकारी नहीं, जो उन्हें नियन्त्रण में रख सके।

इसीलिए धनी लोग शहरों में इकट्ठे होते हैं और अपनी ही जैसी रुचि के दूसरे धनवानों के बीच जा बसते हैं। वहाँ भोग-विलास के हर प्रकार के साधन की सावधानी के साथ निगरानी करने के लिए बहुत-सी पुलिस तैनात रहती है। इस तरह के शहरियों में मुख्य स्थान सरकारी कर्मचारियों का है। उनके आस-पास तरह-तरह के कारीगर, व्यापारी और धनी लोग आ बसे हैं। धनियों को किसी वस्तु के लिए बस इच्छा भर करने की आवश्यकता होती है और वह वस्तु उनके सामने कर दी जाती है। नगरों में रहना धनिकों को अधिक प्रिय भी होता है, क्योंकि वहाँ उनके अभिमान को संतुष्टि का मार्ग मिल सकता है। वहाँ वे भोग-विलास में दूसरों के साथ होड़ कर सकते हैं, उन्हें चकित कर सकते हैं और नीचा भी दिखा सकते हैं। सबसे बड़ी बात, जिसके कारण उन्हें शहर में रहना अधिक रुचिकर प्रतीत होता है, यह है कि पहले तो वैभवशाली होने के कारण उन्हें अपने गाँव में रहना बड़ा अप्रिय और कष्टकर लगता था और अब नगर में आ जाने पर उन्हें शान-शौकत से न रहना अप्रिय मालूम होता है; क्योंकि नगर में आस-पास के सभी लोग ऐसे ही रहते हैं। रहन-सहन का जो ढंग उन्हें गाँव में भयप्रद और भद्दा प्रतीत होता था, वही नगर में बिलकुल उचित लगता है। नगर में एकत्र होकर धनवान् लोग अधिकारियों की छत्रछाया में शान्तिपूर्वक उन्हीं पदार्थों की माँग करते हैं, जो गाँव से आते हैं। जहाँ अमीर लोग नित्य-नये आमोद-प्रमोद मनाते हैं और गाँव से हथियाये हुए धन का उपयोग करते हैं, वहाँ जाने के लिए कुछ अंश में ग्रामीणों को बाध्य हो जाना पड़ता है, ताकि वे अमीरों की मेज से गिरनेवाले जूठन से अपना पेट भर सकें। अमीरों के इस आरामतलब और वैभवपूर्ण जीवन को देखकर कुछ-कुछ देहातियों की भी इच्छा अपने जीवन की इस प्रकार व्यवस्था करने की होती है कि उन्हें स्वयं तो कम काम करना पड़े और वे दूसरों के परिश्रम का अधिक सुखभोग सकें। स्मरण रहे कि इस प्रकार के जीवन को सभी लोग अच्छा समझते हैं और उसका समर्थन करते हैं।

यही कारण है कि देहात के स्त्री-पुरुष शहर जाते हैं और वहाँ धनिकों का पता लगाकर

→

कदर है। भोजन के लिए केले के पत्ते की जगह छोटे-छोटे पत्तों से बने पत्तल-दोने मैं ज्यादा पसन्द करता हूँ। निसर्ग को जीतकर नहीं, निसर्ग के सहयोग से मनुष्य ने अपने विचार और व्यवहार में विकास किया है, इससे मैं धन्यता महसूस करता हूँ। मैं कच्चा आहार पचा भी नहीं सकता हूँ पसंद भी नहीं करता हूँ। भोजन बनाने की कला को मैं महत्त्व मानवता हूँ और एक बात कहूँ तो धृष्टता हो सकती है। मैं स्वाद में विश्वास करता हूँ। कितनी ही चीजें, जिनको मेरा पेट स्वीकार नहीं कर सकता, मैं स्वाद के लिए कणभर चखता हूँ। इसमें वह चीज और उस चीज को बनानेवाला व्यक्ति, दोनों से मेरा हार्दिक सम्बन्ध जुड़ जाता है। ('मनीषी की स्नेहगाथा' से साभार)

प्रस्तुति : बद्रीनाथ सहाय

उनसे उन पदार्थों को, जिनकी उन्हें आवश्यकता होती है, हर सम्भव रीति से वापस लेने का प्रयत्न करते हैं। इसके लिए अमीर लोग उन पर जो शर्तें लगाते हैं, वे स्वीकार कर लेते हैं। वे उनकी सारी मनोवांछित उमंगों की पूर्ति में सहायता देते हैं; या तो उनकी स्त्रियाँ या वे स्वयं हमामों और होटलों में नौकरी बजाते हैं। कोचवानी या वेश्यावृत्ति करते हैं। गाड़ियाँ, खिलौने और फैशनेबिल कपड़े बनाते हैं और धीरे-धीरे धनवानों से उनकी ही तरह रहना सीख लेते हैं। अर्थात्, वे स्वयं श्रम न कर दूसरों की भिन्न-भिन्न युक्तियों द्वारा इकट्ठी की हुई सम्पत्ति का अपहरण करना जान जाते हैं और इस प्रकार बिगड़कर नष्ट हो जाते हैं। शहरों में, शहर के पैसे से बिगड़े हुए ऐसे ही निर्धन रहते हैं। मैं इन्हीं की सहायता करना चाहता था, किन्तु कर न सका।

जरा गाँव के उन लोगों की स्थिति पर विचार कीजिये, जो पेट पालने या टैक्स भरने के लिए पैसा कमाने शहर आते हैं! एक ओर तो उन्हें एक-एक पैसे के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक करना पड़ता है, दूसरी ओर वे देखते हैं कि उनकी चारों ओर लोग पागलों की भाँति हजारों रुपये पानी की तरह बहा देते हैं और चुटकियों में सैकड़ों रुपये कमा लेते हैं। ऐसी अवस्था में यदि उनमें से एक ही व्यक्ति मेहनत-मजदूरी करके पेट पालना पसन्द करता है और यदि सब-के-सब पैसा कमाने के आसान साधनों—व्यापार, पशु-विक्रय, भिक्षा, व्यभिचार, धोखाधड़ी, चोरी आदि—का आश्रय न लें, तो यह निस्सन्देह आश्चर्य की बात है।

शहर की अनन्त रंगरलियों में भाग लेते-लेते हम लोग इस प्रकार के जीवन के इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि हमें अकेले एक आदमी का, पाँच बड़े-बड़े कमारें में रहना सर्वथा स्वाभाविक मालूम पड़ने लगता है—ऐसे कमरे, जिन्हें गरम करने के लिए इतना ईंधन जलाया जाता है, जितना बीस परिवारों के लिए भोजन बनाने और उनके घरों को गरम रखने के लिए काफी हो सकता है। इसी प्रकार आध मील जाने के लिए दो घोड़े और दो साईस रखने, अपने बेल-बूटेदार फर्शों पर गलीचे बिछाने और नाच-गाने में दस-पाँच हजार रूबल व्यय कर देने की बात तो दूर रही, बड़े दिन के वृक्ष के लिए पचीस रूबल खर्च करना आदि भी हमें स्वाभाविक मालूम पड़ने लगता है, किन्तु जिस आदमी को अपने परिवार का पेट पालने के लिए दस रूबलों की आवश्यकता है, अथवा जिसकी आखिरी भेड़ सात रूबल का कर भरने के लिए बिकी जा रही है और जो कड़ी मेहनत करके पैसा पैदा नहीं कर पाता, वह ऐसे जीवन का अभ्यस्त नहीं बन सकता। हम लोग समझते हैं कि ये सब बातें गरीबों को स्वाभाविक मालूम होती हैं। कुछ लोग तो यह कहते हुए और इस बात के लिए वे हमारे कृतज्ञ हैं, परन्तु निर्धन होने से मनुष्य की बुद्धि नहीं मारी जाती है। निर्धन भी हमारी ही तरह तर्क-वितर्क कर सकते हैं। जब हम सुनते हैं कि किसी ने दस-बीस हजार रूबल उड़ा दिये, तो तत्काल हमारे मन में यही विचार आता है कि ''कितना मूर्ख और बेकार आदमी है यह, जिसने इतने रुपये व्यर्थ ही बर्बाद कर दिये! अगर इतने रुपये मेरे होते, तो इनका मैं अपने खेत की उन्नति करने या उस मकान को बनवाने में सदुपयोग करता, जिसे बनवाने की मुझे इतने दिनों से इच्छा थी'' आदि-आदि। कंगालों के मन में भी घन को मूर्खतापूर्वक नष्ट होते देख ठीक इसी प्रकार के विचार उठते हैं। सच पूछिये तो उनके मन में ये तर्क-वितर्क और भी अधिक होते हैं, क्योंकि उन्हें उस धन की आवश्यकता किसी लोभ की पूर्ति के लिए नहीं, बल्कि जीवन की अपरिहार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होते है। हम लोग यह सोचने में बहुत बड़ी भूल करते हैं कि गरीब लोग इन बातों पर ध्यान नहीं देते और वे अपनी चारों ओर फैली हुई विलासिता को शांतिपूर्वक देख सकते हैं।

निर्धनों ने इस बात को कभी उचित नहीं माना और न मानेंगे कि कुछ लोग तो सदा गुलछर्रे उड़ायें और कुछ भूखों मरें और हड्डियाँ तोड़ें। इस अन्याय को देखकर पहले तो उन्हें आश्चर्य के साथ-ही-साथ क्रोध आता है; किन्तु बाद में वे इसके अभ्यस्त हो जाते हैं और यह देखकर कि समाज की ऐसी ही व्यवस्था ठीक मानी जाती है, वे स्वयं भी काम से बचने तथा सदा रंगरलियाँ मनाने की चेष्टा करते हैं। कुछ को सफलता मिल जाती है और वे सदा आनन्द-भोग में मस्त रहने लगते हैं; कुछ इस प्रकार के जीवन को प्राप्त करने के लिए धीरे-धीरे अपनी भावनाएँ उत्तेजित करने लगते हैं और कुछ अपनी लक्ष्य-प्राप्ति में असफल होने के कारण हताश हो जाते हैं और मेहनत-मजदूरी की आदत छूट जाने से वेश्यालयों या अनाथाश्रमों की शरण लेते हैं। ❑

पृष्ठ 7 का शेष...

सूचना भी पाँच मिनट के अन्दर सारे देश में फैल जायेगी और उसी क्षण सार्वत्रिक हड़ताल हो जायेगी और जैसा कि सरदार (पटेल) ने कहा था, सात दिन के अन्दर सरी क्रान्ति सफल हो जायेगी। परन्तु उसके लिए प्रेम और अहिंसा का संगठन करना होगा।

अन्त में एक बात और कह दूँ। विद्यार्थी राजनीति में भाग लें या नहीं, यह प्रश्न अनेकों ने अनेक बार पूछा है। सच बात यह है कि हमारे देश का राष्ट्रीय आन्दोलन राजनैतिक आन्दोलन नहीं है। जब घर को आग लगती है, तो क्या कोई इस प्रकार का प्रश्न पूछता है कि बुझाने जायें कि नहीं? जितनी बड़ी बाल्टी उठ सके, उठाकर हर आदमी को दौड़ पड़ना चाहिए। छोटा बच्चा छोटी बाल्टी लेगा। गुलामी की आग बुझाने में सभी को भाग लेना चाहिए। छोटा विद्यार्थी है, तो छोटी बाल्टी उठाये। परन्तु उछाये जरूर।

(सर्व सेवा संघ द्वारा प्रकाशित 'क्रान्त-दर्शन' से)

आजाद देश के पराधीन बच्चे

❑ प्रशांत कुमार दुबे

आजादी के मायने क्या यही हैं कि हम एक आजाद देश में महज साँस लेते हैं या हमें अपनी तरह से जीने का, सुरक्षा का, सहभागिता का, विकास का अधिकार हो और हम सम्मान के साथ जी सकें। यह दूसरा विकल्प ही आजादी का सारगर्भित, व्यापक और वास्तविक विकल्प है। आजादी के 68 सालों बाद भी बच्चे अभी भी वास्तविक आजादी का मुँह ताक रहे हैं। भारत में दुनिया के कुल बच्चों में से 19 फीसदी रहते हैं, जो कि देश का 42 फीसदी है। इतनी बड़ी जनसंख्या की आज क्या हालत है? बच्चे भारत में अधिकारों की छेद भरी चादर से बखूबी लिपटे हैं और उन छेदों में से हमें बच्चों के साथ दुर्व्यवहार और अधिकार हनन की खबरें मिलती रहती हैं। बच्चों की स्थिति को हम चारों अधिकारों जीवन, सुरक्षा, सहभागिता और विकास के अधिकार चक्र में समझने का प्रयास करते हैं।

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के अनुसार देश में आधी महिलाएँ खून की कमी से ग्रसित हैं। यानी देश में बच्चे के जन्म से पहले ही उसके लिए विपरीत स्थिति पैदा हो रही है। आज भी विकासशील देशों में पैदा होनेवाले कम वजन के बच्चों में से 35 फीसदी भारत में पैदा होते हैं। हमारे 42 फीसदी बच्चे कुपोषित हैं। इतना ही नहीं 69 प्रतिशत बच्चे स्वयं भी खून की कमी का शिकार हैं। तमाम प्रगति और सूचकांकों की उछाल के बीच हम आज भी सालाना 25 लाख बच्चों को मरते देखने के लिए अभिशप्त हैं। देश के केवल 40 फीसदी बच्चे ही पूरी तरह से टीकाकृत हो पाये हैं। इस वजह से हर 16 बच्चों में से 1 बच्चा एक साल की उम्र पूरी करने से पहले और हर 11 बच्चों में से 1 बच्चा पाँच वर्ष की उम्र पूरी करने से पहले दम तोड़ देता है। इस दिशा में 11वीं पंचवर्षीय योजना (2007-12) ने बहुत ही क्रांतिकारी लक्ष्य निर्धारित किये थे, लेकिन आज तक हम उसके आसपास भी नहीं फटके हें। दूसरी ओर व्यापक भुखमरी की स्थिति बच्चों के लिए बहुत ही गंभीर संकट पैदा करती है।

आज भी मात्र 37 फीसदी बच्चों का ही जन्म पंजीकरण सुनिश्चित हो पाया है। यह मुद्दा नागरिकता और बच्चों की पहचान से जुड़ा है। हम गिरते लिंगानुपात को भी नहीं रोक पाये हैं और आजादी के बाद से पहली बार सबसे कम बाल लिंगानुपात (914) के दौर में हैं। बड़ी संख्या में बच्चे मजदूरी में लगे हैं। जनगणना 2011 के आँगड़ों को देखें तो 5 से 14 वर्ष तक के 1.01 करोड़ बच्चे बालश्रम में लिप्त हैं। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के अनुसार हर साल 45000 बच्चे खो जाते हैं और उनमें से 11000 बच्चे फिर कभी नहीं मिलते। जाहिर है कि ये बच्चे मानव तस्करी का शिकार हो रहे हैं। हम अभी भी बालविवाह की काली छाया से नहीं उबर पाये हैं, हाल ही में आयी एक रिपोर्ट के अनुसार अभी भी विश्व की एक तिहाई बालिका वधू भारत में हैं। केंद्रीय गृह मंत्रालय की रिपोर्ट की मानें तो देश के 16 राज्यों में आंतरिक संघर्ष चल रहे हैं और इससे पीड़ित बच्चे बहुत ही कठिन परिस्थितियों में जी रहे हैं।

हमारे संविधान में यह लिखा गया है कि 10 साल के भतीर (सन् 1950 से) 6-14 वर्ष की उम्र के सभी बच्चे पाठशाला की परिधि में होंगे, लेकिन आज तक यह संभव नहीं हो सका है। आज भी लाखों बच्चे विद्यालयों से बाहर हैं। हालाँकि हमने पाँचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-79) के बाद से इस दिशा में और गंभीरता से सोचना शुरू कर दिया था और अब तो हमारे पास शिक्षा का अधिकार कानून (सन् 2009) भी है, उसके बाद भी अपेक्षित प्रगति देखने को नहीं मिल रही है। हम अधोसंरचना विकास में पिछड़े हैं, गुणवत्ता से कोसों दूर हैं, सामाजिक लिंगभेद के चलते हम अभी तक लड़कियों की शिक्षा के आँकड़े को बराबरी पर नहीं ला पाये हैं। जनसंख्या का 6 फीसदी विकलांग हैं लेकिन हम उनमें से अधिकांश को विद्यालय तक लाने में विफल रहे हैं। हमारे पास उनके लिए पर्याप्त संसाधन भी नहीं हैं।

हम जातिप्रथा व छुआछूत से नहीं उबर पाये हैं, जिसका असर शिक्षा पर भी दिखता है। बच्चे पाठशालाओं में आ भी जायें तो भी हम अनेकानेक कारणों से उन्हें वहाँ रोक पाने में सक्षम नहीं हैं।

भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के 2 अप्रैल 2013 के पत्र के अनुसार शिक्षा का अधिकार कानून लागू होने के चार साल बाद भी देश 6.69 लाख शिक्षकों की खतरनाक कमी से जूझ रहा है। देश के लगभग आधे विद्यालयों में बच्चों को साफ शौचालय उपलब्ध नहीं है। पोषण की कमी के अभाव में बच्चे विद्यालयों में ध्यान नहीं लगा पाते हैं और ड्रॉपआउट होते हैं। शिक्षा के लिए 6 फीसदी बजट आजाद भारत का एक ख्वाब था तो आज भी अधूरा है। इन सभी स्थितियों के मद्देनजर भारत के सामने 2015 तक सबको शिक्षा देने के लिए तय किये गये सहस्राब्दी विकास लक्ष्य को हासिल न कर पाने का गंभीर संकट खड़ा हैं।

संयुक्त राष्ट्र बाल अधिकार समझौता, 1989 कहता है कि बच्चों से जुड़े हर

मामलों में उनकी राय ली जाना बहुत जरूरी है। इसके विपरीत देश में बन रहे नीति व नियमों में बच्चों की सहभागिता सुनिश्चित नहीं की जाती है। ग्रामसभा में बच्चों की बातें सुनी नहीं जाती हैं। बच्चों को अपनी बात कहने और हमारे द्वारा उनकी बात सुनने के लिए कोई मंच नहीं है। बच्चे बलात विस्थापन की विभीषिका से जूझ रहे हैं, लेकिन पुनर्वास नीतियों में बच्चों की राय लिया जाना तो दूर बल्कि 'बच्चा' शब्द तक का जिक्र नहीं मिलता।

यानी विकास के इस पूरे चक्र में बच्चे बहुत ही निचले पायदान पर हैं। क्या पिछले 68 वर्षों में भारत ने बच्चों के विषय में सोचा ही नहीं! ऐसा नहीं है,बल्कि भारत का संविधान अनुच्छेद 14,15,24,39,45 आदि में बच्चों के सम्बन्ध में एक अनुकूल वातावरण तैयार करता है। हमने बच्चों के सम्बन्ध में कई अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं पर सहमति जतायी है और उन्हें अंगीकृत किया है, जिनमें से संयुक्त राष्ट्र बाल अधिकार समझौता 1989, सीडा प्रमुख है। हमने अपनी आंतरिक संरचनाओं में भी परिवर्तन किये हैं जैसे कि हमने बच्चों को ध्यान में रखकर एक अलग मंत्रालय बनाया है। राष्ट्रीय बाल नीति है। नेशनल चार्टर 2003 और नेशनल प्लान ऑफ एक्शन 2005 भी है। हमने बच्चों हेतु बजट की प्रक्रिया शुरू की है। पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के बाद से बच्चों को केन्द्र में रखकर सोचना शुरू किया है। हमारे पास अब बच्चों से संबंधित कई महत्त्वपूर्ण कानून हैं जिनमें बाल श्रम अधिनियम, किशोर न्याय अधिनियम, शिक्षा का अधिकार अधिनियम, पाक्सो कानून, बाल विवाह निषेध अधिनियम, अनैतिक व्यापार अधिनियम शामिल हैं।

इसके बावजूद हम आज तक देश में बच्चे की एक उम्र तय नहीं कर पाये हैं। अलग-अलग कानूनों के अनुसार यह उम्र 0-18 वर्ष के बीच है। हमने निजीकरण, उदारीकरण और वैश्वीकरण को ही विकास का बुनियादी आधार मान लिया है और इस अंधी दौड़ में अधिकार कहीं कोने में दुबके नजर आते हैं। जैसा हमारे घरों में होता है कि बच्चों की गिनती सबसे बाद में होती है वैसे ही विकास की इस पूरी प्रक्रिया में बच्चे पिछड़ जाते हैं। किसी ने कहा है कि स्त्री आखिरी उपनिवेश है लेकिन सवाल यह है कि यदि स्त्री आखिरी उपनिवेश है तो फिर बच्चे क्या हैं? (सप्रेस)

लड़ाई, पढ़ाई साथ-साथ

❑ बाबा मायाराम

''पढ़ाई क्या होती है, हम नहीं जानते थे। एक बार मेरा दोस्त दुरला बीमार हो गया था तो उसने अपनी एवज में अपने बड़े भाई रेवानिया को स्कूल भेज दिया था। ठीक उसी तरह जैसे परिवार में काम पर जानेवाला कोई व्यक्ति बीमार हो जाता था तो उसकी एवज में घर के दूसरे आदमी को भेज देते हैं।''

यह घटना मुझे भादल गाँव के सुनील ने बतायी जो दुरला के साथ ही पढ़ रहा था। यह भोलापन नहीं, पढ़ाई के बारे में अनभिज्ञता थी। सुनते हुए मुझे संविधान की याद आयी जिसमें 1960 तक 14 साल तक हर बच्चे को मुफ्त शिक्षा का निर्देश दिया गया था। लेकिन आज भी इस लक्ष्य से हम बहुत दूर हैं। भादल गाँव, महाराष्ट्र के नंदुरबार जिले की अकरानी तहसील में है। यह गाँव भी अन्य गाँव की तरह गुजरात में बन रहे सरदार सरोवर बाँध की वजह से उजाड़ा गया है। इस गाँव की नयी बसाहट चिखली गाँव में हुई है। यह अकेला गाँव नहीं है, जहाँ पढ़ाई के बारे में लोगों को पता नहीं था। परन्तु अब तस्वीर बदल रही है। नर्मदा बचाओ आंदोलन के साथ आदिवासियों ने मिलकर खुद के स्कूल शुरू किये हैं जिन्हें 'नर्मदा जीवनशाला' के नाम से जाना जाता है। पहले यहाँ के सरकारी स्कूल कागज पर चलते थे। शिक्षक सिर्फ 26 जनवरी और 15 अगस्त को ही झंडा फहराने आते थे। स्कूल ठीक से चले, इसके लिए नर्मदा बचाओ आंदोलन ने बहुत कोशिश की। विकासखंड स्तर से लेकर जिला, प्रदेश और केन्द्रीय मंत्रियों तक गुहार लगायी गयी लेकिन स्कूलों की हालत नहीं सुधरी। आदिवासियों के कल्याण के लिए आजादी के बाद से बहुत सी योजनाएँ बनीं, कार्यक्रम बने। पर आदिवासियों के हालात नहीं बदले। गरीबी तो बनी रही, शिक्षा की रोशनी भी अधिकांश लोगों तक नहीं पहुँची। आजादी के बाद से अब तक विकास के नाम पर जितनी भी योजनाएँ बनीं उनमें सबसे ज्यादा आदिवासी और दलित ही उजड़े। अकेले सरदार सरोवर बाँध से ही 244 गाँव प्रभावित हुए। एक नगर भी इसकी चपेट में आया है। गुजरात के बाँध स्थल से पहाड़ी गाँव भादल तक और उसके आगे करीब 70 आदिवासी गाँव प्रभावित हुए हैं। उनके घर, जमीन, खेती-बाड़ी सब डूबी है।

सतपुड़ा और विध्यांचल पहाड़ों के बीच बहनेवाली नर्मदा के किनारे भील, भिलाला, पावड़ा, तड़वी आदिवासी रहते हैं, जिनकी आजीविका मुख्यतः जल, जंगल और जमीन

पर ही निर्भर है। नर्मदा घाटी दुनिया की सबसे पुरानी संस्कृतियों में से एक है। घाटी में हरे-भरे जंगल और उनके साथ-साथ आदिवासी, किसान, कारीगर, मछुआरे, कुम्हार, व्यापारियों तक सभी नर्मदा को नदीमाता मानते हैं। नर्मदा कछार की जमीन सबसे ज्यादा उपजाऊ मानी जाती है। इसका साफ, निर्मल बहता जल और उसका अपूर्व सौंदर्य मोहता है। लेकिन इसके किनारे लोगों की जिंदगी और नर्मदा पर संकट तब आया जब सरदार सरोवर बाँध बना और इन्हें उजाड़ा गया। सबसे पहले आदिवासियों को उजाड़ने की शुरुआत वर्ष 1993 में हुई। नर्मदा बचाओ आंदोलन ने घाटी में इसके खिलाफ लंबी लड़ाई लड़ी औ संघर्ष का सिलसिला अब भी जारी है। छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा के मशहूर मजदूर नेता शंकर गुहा नियोगी ने संघर्ष के साथ निर्माण का रास्ता अपनाया था। उन्होंने नारा दिया था संघर्ष के लिए निर्माण, निर्माण के लिए संघर्ष। उन्होंने कहा कि ''संघर्ष और निर्माण, दो पैरों की तरह हैं—इनमें से केवल एक के सहारे जो चलने की कोशिश करेगा, वह लड़खड़ा कर गिर पड़ेगा, दोनों के बीच तालमेल रखकर ही आगे बढ़ा जा सकता है।'' नर्मदा बचाओ आंदोलन ने यही रास्ता अपनाया। नर्मदा घटी में संघर्ष के साथ नवनिर्माण का काम भी हुआ।

आंदोलन ने भूमि अधिकार के साथ-साथ शिक्षा का सवाल भी उठाया। एक प्रतिशत से भी कम शिक्षितों का और महाराष्ट्र के पहाड़ी आदिवासी गाँवों में कागज पर चल रही शालों का सवाल भी उठाया। धरना, रैली और प्रदर्शनों का सिलसिला चला। जाँच हुई। लेकिन कुछ कार्रवाई के बाद स्कूल बंद ही रहे। आखिरकार, वर्ष 1992 में नर्मदा बचाओ आंदोलन के सत्याग्रह के दौरान पहली जीवनशाला चिमलखेड़ी में शुरू की गयी। उस समय नर्मदा सत्याग्रह चल रहा था। डूबेंगे पर हटेंगे नहीं, के संकल्प के साथ लोग डटे रहे। उस दौरान लोगों के पास काफी समय हुआ करता था, तो सत्याग्रह में मौजूद लोगों ने बिना पढ़े आदिवासियों को नाम लिखना व हस्ताक्षर करना सिखाया।

तब पढ़ाई-लिखाई नर्मदा की रेत में होती थी। अँगुली से या लकड़ी से लिखना सिखाया जाता था। इससे आदिवासियों में पढ़ने की रुचि जागी, जिससे आगे चलकर नर्मदा जीवनशाला खोलने का विचार बना और चिमलखेड़ी गाँव में पहली जीवनशाला शुरू हुई। यहाँ के निवासी आठया भाई ने इसके लिए जमीन दी व बुजुर्ग जुगला ने अन्य सहायता उपलब्ध करायी।

वर्तमान में महाराष्ट्र में 7 और मध्यप्रदेश में 2 जीवनशालाएँ चल रही हैं। यह आवासीय शालाएँ हैं। यहाँ पहली से चौथी/पाँचवीं तक की पढ़ाई (राज्य नियमों के अनुसार) होती है। ये जीवनशालाएँ ऐसे दूरस्थ, दुर्गम और पहाड़ी अंचलों में स्थित हैं, जहाँ आजादी के बाद से शिक्षा की रोशनी नहीं पहुँची है। इन क्षेत्रों में न तो बिजली है और बहुतांश शालाओं तक सड़क ही नहीं। स्वास्थ्य सुविधाओं की पहुँच भी नहीं है। हाल ही में मैं वहाँ जीवनशाला के बाल मेले में गया था। बच्चों, शिक्षकों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, ग्रामीण आदिवासियों से मिला। रंग-बिरंगी पोशाकों में बाँसुरी की तान और ड्रम, झाँझ, ढपली की मधुर थापों के बीच मेले की शुरुआत हुई। मेले में करीब 500 छात्र आये थे। शिक्षक, पालक, अभिभावक और ग्रामीण बड़ी संख्या में एकत्र हुए थे। खेल मैदान में सुबह 9 बजे से ही खेल शुरू हो जाते थे और सूर्यास्त तक चलते थे। खेल मैदान से डेढ़ किलोमीटर दूर बच्चों के रहने और खाने की व्यवस्था की गयी थी। यहाँ से बच्चे नारे लगाते हुए, ड्रम बजाते हुए खुशी व उत्साह से आते-जाते थे। उनके साथ शिक्षक होते थे। स्कूलों में बच्चों की देख-रेख करनेवाली सहायिकाएँ, जिन्हें वे मौसी कहते हैं, भी साथ होती थीं। इन चार दिनों में मैंने इन बच्चों का जो कमाल देखा, वैसा मैंने कभी नहीं देखा। छोटे-छोटे बच्चों की खो-खो में लंबी छलांग, चीते की तरह दौड़ना, उछलना, कबड्डी में ताल ठोकना और जीतने के लिए पूरी ताकत से खेलना। कबड्डी और खो-खो की टीमें बहुत प्रशिक्षित थीं। खेल के शिक्षक बच्चों के साथ रहते थे और बच्चे ड्रम बजाकर उनका उत्साहवर्धन करते थे। खेल के मैदान में इन बच्चों ने जिस तरह खेल-कौशल का परिचय दिया, उसका कोई जोड़ नहीं है। डनेल, थुवाणी, मणिबेली, त्रिशुल, सवारिया, दीगर, भाबरी, भिताड़ा, खारयया भादल और जीवन नगर आदि नर्मदा जीवनशालाओं के लड़के और लड़कियों की टीमें मैदान में उतरी थीं। कबड्डी और खो-खो आकर्षण के केन्द्र थे। तीरकामठा की स्पर्धा भी हुई। इसके अलावा, यहाँ वैकल्पिक ऊर्जा से जुड़े सोलर लैम्प और नर्मदा की फोटो प्रदर्शनी भी लगायी गयी थी। नर्मदा आंदोलन से जुड़ा साहित्य भी उपलब्ध था। मिट्टी की मूर्तियाँ और खिलौने, चित्रकला और निबंध प्रतियोगिताएँ भी आयोजित की गयी थीं। देर रात तक सांस्कृतिक कार्यक्रमों ने समा बाँधा। बच्चों ने गीत, नृत्य और नाटक पेश किये। नाटक बहुत ही अर्थपूर्ण और सार्थक थे, जिनमें देश की कई ज्वलंत समस्याओं को उठाया गया। इसमें वीर खाज्या नायक, भीमा नायक और टंटिया भील जैसे आदिवासियों की कहानी बतायी गयी, इन सभी ने अंग्रेजों से कड़ी टक्कर ली थी। मुझे यह देखकर सुखद आश्चर्य हुआ कि इतनी कम उम्र में उनमें अच्छी समझदारी व मुद्दों को समझने की क्षमता विकसित हो गयी है। (सप्रेस)

गैस्ट्रोन्यूरोसिस : कारण और उपचार

q डॉ. विमल कुमार मोदी

प्रायः रोगी चिकित्सक के पास जाता है और उसका परीक्षण करने के बाद चिकित्सक घोषित करता है–'मुझे तो आप में कोई गड़बड़ी नजर नहीं आती', डॉक्टर का ऐसा कहना एक तरह से सही भी है। डॉक्टर ने शरीर का परीक्षण किया और उसे कोई गड़बड़ी नहीं मिली। डॉक्टर ने रोगी की मानसिक स्थिति का परीक्षण नहीं किया। डॉक्टर ने नकारात्मक उत्तर के बाद भी, रोगी को ऐसा कष्ट हो सकता है, जो पूरा-पूरा 'न्यूरोटिक' हो और शरीर संबंधी कोई गड़बड़ी उसमें न दिखे।

रोगी पेट में दाहिनी ओर ऐसी पीड़ा का अनुभव कर सकता है, जिससे उसे एपेंडिसाइटिस होने का भ्रम उत्पन्न हो। यदि पीड़ा पेट में हो तो अल्सर का भ्रम पैदा कर सकता है। यदि पीड़ा हृदय-प्रदेश के करीब हो तो, हृदय-कष्ट का भ्रम हो सकता है। इसी प्रकार रोगी के शरीर में कहीं पीड़ा हो सकती है और उससे किसी अन्य रोग का भ्रम हो सकता है।

मानव के तीन स्तर : यदि हम मानव के अस्तित्व पर विचार करें, तो हम देखेंगे कि उसके तीन स्तर हैं–शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक। इन तीनों स्तरों के रोग एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। पर ऐसा भी संभव है कि कोई व्यक्ति तीनों–शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टियों से रूग्ण हो। यह बात स्पष्ट है कि आज के युग में आधुनिक सभ्यता के फलस्वरूप मानसिक स्तर पर आदमी पर बेतरह बोझ लदा हुआ है। इसका कारण है—अति भाग-दौड़ का जीवन और अति तनाव की स्थिति। ऐसे शहरों में जहाँ के जीवन में भाग-दौड़ अत्यधिक रहती है, हृदय की गड़बड़ियाँ अधिक देखने को मिलती हैं। इनके मुकाबले में छोटे गाँवों में, जहाँ का जीवन इतना तनावपूर्ण नहीं होता, इस प्रकार का कष्ट कम देखने को मिलता है।

भावनात्मक अथवा मानसिक गड़बड़ी का सबसे अधिक दुष्प्रभाव हमारी पाचन-प्रणाली पर पड़ता है। 25 प्रतिशत गैस्ट्रो-इंटेस्टाइनल कष्ट का कारण मानसिक तनाव से उत्पन्न नाड़ी-विकार है और इसके पीछे कारण होता है—मन पर अत्यधिक दाब डालनेवाला काम।

पाचन-संबंधी ऐसे कष्ट जिनका संबंध शरीर की प्रक्रिया से है और जिनके पीछे कारणरूप गलत खान-पान एवं गलत रहन-सहन हो, उन्हें हम विभिन्न दशाओं में भिन्न-भिन्न नाम दे सकते हैं—यथा गैस्ट्राइटिस, अल्सर, अपेंडिसाइटिस, कोलाइटिस आदि। पर जिन कष्टों में कारण शरीर दोष न हो, उन्हें हम न्यूरोसिस कहेंगे। और उसका कारण मस्तिष्क में हृदय से ज्यादा उत्तेजन होना है।

न्यूरोसिस के कारणें में सबसे मुख्य है अत्यधिक चिन्ता, चिन्ता व्यक्ति को दैनिक काम-काम की हो सकती है। दैनिक काम में यदि व्यक्ति को अत्यधिक श्रम करना पड़े, या निर्धारित करना पड़े या दफ्तर का अधिकारी उसे दिनभर डाँटता-फटकारता रहे, तो इन परिस्थितियों में भी न्यूरोसिस के लिए कारणरूप होगा। घर पर नित्य होनेवाला, झगड़ा-झंझट भी न्यूरोसिस का कारण हो सकता है। पति-पत्नी के पारस्परिक संबंधों में गड़बड़ी, पैसों की चिन्ता, भय, परेशानी तथा आघात पहुँचानेवाले समाचार भी व्यक्ति को न्यूरोसिस के चक्कर में फँसा सकते हैं।

भय पर विजय पाना आवश्यक : मानसिक स्थिति पर सबसे पहले नाड़ी-मंडल ही अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। जो चीज मन अथवा मस्तिष्क में गड़बड़ी उत्पन्न करती है और उसके फलस्वरूप पाचन-तंत्र में गड़बड़ी पैदा होती है। इसके पीछे कारण यह है कि पाचन की समस्त क्रिया नाड़ी-मंडल से संचालित होती है। साइकोन्यूरोसिस भय तथा विशिष्ट रूप में चिन्ता का प्रतिफल है। अतः कारण दूर करने पर लक्षण स्वतः समाप्त हो जाते हैं। इसके लिए व्यक्ति को अपना दृष्टिकोण सकारात्मक बनाना चाहिए। ऐसा करने पर भी कभी-कभी पूर्ण स्वास्थ्यलाभ में महीनों लग जाते हैं।

रोगी का पूर्ण सहयोग अत्यावश्यकः गैस्ट्रो-न्यूरोसिस के इलाज के लिए रोगी का पूर्ण सहयोग अत्यावश्यक है। जीवन में संतुलन लाने तथा मनश्चिकित्सा से रोगी मस्तिष्क के आपरेशन से अपनी जान बचा सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सा की दृष्टि से 98 से 100 अंश फारनहीट तापमानवाले जल में स्नान रोगी के लिए बड़ा लाभकर देखा गया है। उसका नाड़ी-मंडल पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। यह स्नान व्यक्ति में शिथिलन की स्थिति लाता है।

इसके अतिरिक्त रीढ़-स्नान भी नाड़ी-मंडल को सशक्त करने का बड़ा अच्छा साधन है। पलंग की चादर को ठंडे पानी में भिगो लीजिए और खड़े-खड़े उसकी चार या छहतह करें। फिर, एक ओर से उसे लपेट कर गोला बनाने लगें और रीढ़ की लम्बाई बराबर चादर छोड़कर शेष को लपेट डालें। फिर, उसे भूमि पर फैला लें। लिपटे भाग को गरदन के नीचे तकिया बनाकर पूरी रीढ़ गैर लिपटे भाग पर रखकर लेट जायें। 20 मिनट उस पर लेटें। फिर बदन पोंछ लें।

इसके अतिरिक्त भोजन-सुधार का ध्यान रखें। तली, भुनी, मिर्च-मसाले की चीजों, चीनी, काफी, चाय, मैदा, शराब आदि का प्रयोग बिलकुल न करें और अपने भोजन में तीन-चौथाई फल और सब्जियों को स्थान दें। रोटी चोकरदार आटे की खायें और कन-समेत चावल के भात का सेवन करें। इतने मात्र से व्यक्ति स्वास्थ्य-लाभ की स्थिति में रह सकता है। (प्राकृतिक उपचार से)

बुन्देलखंडी समाजसेवी शिव विजय भाई से प्रो॰ (डॉ॰) योगेन्द्र यादव की बेबाक बातचीत

प्रो. योगेन्द्र : भाई जी! समाज सेवा की ओर आपका झुकाव कैसे हुआ?

शिव विजय भाई : मेरे मामा अर्जुन भाई 1952 में विनोबा जी के बुंदेलखंड में सहयात्री रहे। जब मैंने होश संभाला, तबसे मैंने उन्हें समाजसेवा करते देखा। उनके जीवन ने मुझे बहुत प्रभावित किया। इसी पारिवारिक परिवेश से मेरे अन्दर भी समाजसेवा के बीच समय आने पर अंकुरित हुए।

प्रो. योगेन्द्र : इसकी शुरुआत आपके जीवन में कैसे हुई?

शिव विजय भाई : वकालत की पढ़ाई करने के बाद मैंने नवयुवक मंगल दल की स्थापना की। मैं उसका अध्यक्ष बना। गाँव के नवयुवकों के साथ मैंने बेहतरी के लिए कई वर्षों तक काम करता रहा।

प्रो. योगेन्द्र : शिव विजय भाई! अभी आपने कहा कि आपने वकालत की पढ़ाई की है, फिर आपने वकालत क्यों नहीं की? जबकि इस माध्यम से भी समाजसेवा हो सकती थी।

शिव विजय भाई : वकालत के लिए गया, बार में पंजीकृत भी हुआ, किन्तु शुरुआती दौर में ही मैंने देखा कि मेरे इस पेशे में लोग अपना बनाकर लोग ठगते हैं। ज्ञान को विशेष तवज्जो नहीं दी जाती है। इस पेशे में पहले तो नो वर्क नो मनी का दौर चलता है, फिर सम वर्क सम मनी का दौर आता है। फिर लेस वर्क मोर मनी का दौर आता है। सैद्धांतिक दृष्टि से मेरे लिए पहली सीढ़ी ही पार कर पाना ही कठिन था। इसलिए वकालत नहीं की।

प्रो. योगेन्द्र : आपका कार्य क्षेत्र गाँव है। इसकी इतनी परिपक्व समझ आपमें कैसे आयी?

शिव विजय भाई : चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय से मैंने रूरल मैनेजमेंट में मास्टर की डिग्री प्राप्त की है।

प्रो. योगेन्द्र : अभी भी एक बात स्पष्ट नहीं हुई कि रचनात्मक कार्य से आपका इतने व्यापक स्तर पर जुड़ाव कैसे हुआ?

शिव विजय भाई : 1997 में निर्मल देशपांडे के नेतृत्व में चित्रकूट में अखिल भारत रचनात्मक समाज का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में मैंने जी-जान से अपनी भूमिका का निर्वहन किया। निर्मला देशपांडे ने मेरे एफर्ट को देखा। उसी समय उन्होंने मुझे इस संस्थान की उत्तर प्रदेश इकाई का सचिव बना दिया। इसके बाद पूरे प्रदेश मैं घूमता रहा और रचनात्मक समाज का काम करता रहा।

प्रो. योगेन्द्र : आपने अपने जीवन में कौन-कौन यात्राएँ की?

शिव विजय भाई : अभी तक मैंने ग्रामस्वराज पदयात्रा, साइकिल यात्रा, वाहन यात्रा, विचार यात्रा, तिब्बत मुक्ति यात्रा और मानसरोवर मुक्ति यात्राएँ की हैं।

प्रो. योगेन्द्र : आपने इतनी यात्राएँ की, फिर इन यात्राओं की सफलता एवं असफलता के क्या कारण हैं?

शिव विजय भाई : इन यात्राओं के दौरान यह समझ में आया कि लोगों में इस बात की समझ तो है कि जीवन प्रकृति सम्यक, ग्राम आधारित होना चाहिए। इन यात्राओं का फालो अप नहीं हो पाने के कारण इनका प्रतिफल नहीं दिखाई देता है। इसकी पीड़ा हमेशा बनी रहती है।

प्रो. योगेन्द्र : क्या आपको नहीं लगता है कि यात्राओं के प्रति लोगों की निष्ठा डगमगाई है?

शिव विजय भाई : सभी यात्राएँ बहुत ही भावपूर्ण सन्देश, परस्पर सम्बन्ध, मधुर सम्बन्ध निर्माण को लेकर की जाती हैं। इन यात्राओं के दौरान हम संपर्क में आने वाले लोगों को कमिटमेंट करके आते हैं, पर वह पूरा नहीं करते, जिसके कारण लोगों की निष्ठा भी अब डगमगाई है। लोग जुड़ते तो हैं, लेकिन उन्हें समय नहीं दे पाने या जो वायदे किये थे, उसे पूरा न कर पाने के कारण लोग नाराज हो जाते हैं।

प्रो. योगेन्द्र : आजकल जो मूवमेंट हो रहे हैं, उनसे भी जनता बहुत आशावान नहीं रह गयी है?

शिव विजय भाई : जी हाँ! आपकी बात सही है। आजकल जितने भी मूवमेंट होते हैं, वे फलदाई नहीं रह गये हैं। दरअसल विनोबाजी के भूदान आन्दोलन के बाद कोई आन्दोलन हुए ही नहीं। आजकल जो मूवमेंट किये जाते हैं, उसमें अपना भला पहले देखा जाता है। समाज का भला हो या न हो। इसकी किसी को परवाह नहीं होती है। इसी कारण आन्दोलन असफल रहे। अभी हाल में जिस आन्दोलन की बड़ी चर्चा रही, अन्ना का आन्दोलन। उसकी राजनीतिक परिणिति होने से भी लोगों में घोर निराशा आयी।

प्रो. योगेन्द्र : आन्दोलन कैसे सफल हों, इसके लिए कुछ सुझाव दीजिये?

शिव विजय भाई : सभी आन्दोलनकारी मनसा, वाचा कर्मणा में साम्य स्थापित करें और समाज में उसी के अनुरूप प्रदर्शन करें तो विश्वास जागृत होगा। कहने और जानकारियों के आधार पर जो ज्ञान बाँटने

का दौर शुरू हुआ है, वह को-रिलेट नहीं हो पा रहा है। स्थायी नेता/सामाजिक कार्यकर्त्ता नहीं दिखायी पड़ रहा है। उनके पीछे लोग नहीं खड़े हो रहे हैं।

प्रो. योगेन्द्र : क्या आपके कहने का मतलब यह है कि जानकारियाँ देना या ज्ञान बाँटना निरर्थक प्रक्रिया है?

शिव विजय भाई : नहीं मेरे कहने का मतलब यह नहीं है। पर ज्ञान बाँटने में सातत्य होना चाहिए। पहले उस ज्ञान या जानकारी को अपने जीवन में उतारे और फिर वाणी की अभिव्यक्ति से श्रोता लाख गुना प्रभावित होगा। अन्यथा जनमानस यह मानने लगा है कि यह भैस जुगाली का एक रूप है।

प्रो. योगेन्द्र : आपके इस कथन में तो गांधी दर्शन समाहित है, ऐसा जान पड़ता है। क्या यह सही है?

शिव विजय भाई : जी हाँ! मैंने तो अपना जीवन ही गाँधी और विनोबा दर्शन के अनुरूप जी रहा हूँ। इसलिए वाणी से तो वही निकलेगा, जो जीवन में होगा। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि ये प्रयोग स्वयं के स्तर से शुरू होने चाहिए। क्योंकि सूक्ष्म साधना का प्रभाव अनंतगामी होता है। उदाहरण के तौर पर हम देख सकते हैं कि महात्मा गांधी ने एकादश व्रत की साधना की थी। उनके देहावसान के इतने वर्ष बाद ब्रिटिश पार्लियामेंट ने इतने वर्ष बाद उनकी मूर्ति अपने यहाँ स्थापित करने की कौन सी परिस्थिति बनी। जिस स्थान पर उनकी मूर्ति स्थापित की गयी है, वहाँ पर उनकी राष्ट्राध्यक्ष के अलावा किसी की मूर्ति नहीं लगती। यह सब महात्मा गांधी ने जो सूक्ष्म साधना की है, उसीका प्रभाव है। मैंने इसे इस रूप में देखता हूँ।

प्रो. योगेन्द्र : एक तरफ आप महात्मा गांधी की सूक्ष्म साधना के प्रभाव की बात कर रहे हैं, फिर महात्मा गांधी को लोग अपने जीवन और आचरण में क्यों नहीं उतार पा रहे हैं?

शिव विजय भाई : आज की भोगवादी, बाजारवादी व्यवस्था में महात्मा गांधी को जी पाना बड़ा कठिन है। किसी एक ही मनुष्य में सम्पूर्ण गांधी उतर सकता है। हाँ, यदि हम टुकड़ों-टुकड़ों को जोड़ कर जीना शुरू करें, तो शायद समग्र गांधी जीने में आ जाये और हम महात्मा गांधी की उस परम्परा को जीवित कर सकें।

प्रो. योगेन्द्र : शिव विजय भाई मैं अपने देश भ्रमण के आधार पर यह कह सकता हूँ कि देश के विभिन्न भागों में आप जैसे बहुत लोग हैं, जो पूरे सातत्य और निष्ठा के साथ आज की भोगवादी एवं बाजारवादी व्यवस्था में भी समाज सेवा के काम में लगे हुए हैं। यदि ये सभी एक मंच पर आ जायें या एक-दूसरे के सहयोगी बन जायें, तो मुझे लगता है कि हम अपने लक्ष्य को जल्दी प्राप्त कर लें और इन गांधीजनों के काम भी उदाहरण के रूप में व्यापक स्तर पर दिखने लगे।

शिव विजय भाई : इसकी आवश्यकता है। जो ऐसे लोग हैं, वे एक मंच पर आयें। जो महात्मा गांधी के खून के अंशधारी लोग हैं, एक टीम एफर्ट करें, जो लोग देश एवं प्रकृति के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं, उनका बहिष्कार करने में सफल हो जायें, तो प्रकृति एवं जीवन दोनों के राहत का बड़ा काम हो सकता है। संसाधनों की लूट बच सकती है और सामाजिक, आर्थिक, नैतिक विकास को बल मिल सकता है।

प्रो. योगेन्द्र : इस पृथ्वी पर जीवन बचाने का एक विकल्प दुनिया के सामने बचा है, पृथ्वी का ताप निरंतर बढ़ रहा है। गर्मियों में लोगों का घर से निकलना मुश्किल हो गया है। कहीं-कहीं तो अघोषित कफ्यू की स्थिति है। सूखे से देश के अधिकांश अंचलों में हाहाकार मचा हुआ है। इन सबके बावजूद लोग महात्मा गांधी का जीवन और दर्शन को अपनाने में क्यों हिचकिचा रहे हैं? दूसरे इस समय गांधीजनों के लिए भी ऐसी पृष्ठभूमि बनी हुई है कि वे अपनी बात जनता को आसानी से समझा सकते हैं। इसे आप किस रूप में देखते हैं?

शिव विजय भाई : देश और दुनिया इस बात को समझने लगी है कि जीवन शैली को प्रकृति सम्यक बनाना ही पड़ेगा। तभी ताप से, भूख से ये बच सकती है। अन्यथा जैसा आप देख रहे हैं कि देश के अधिकांश भागों में दिन का तापमान 50 के आस-पास आ गया है। यदि इसके ऊपर चला जायेगा, तो देश में एक भी चिड़िया नहीं बचेगी। इससे जीवन असंतुलन बनेगा और मनुष्य का जीवन भी समाप्ति की ओर बढ़ जायेगा। इसकी छटपटाहट तो लोगों में है। आज शहर के लोग इसकी चर्चा करने लगे हैं। किन्तु दुर्भाग्य यह है कि वे अपनी जीवन शैली से नीचे उतर कर जीने को तैयार नहीं है। आप देख रहे हैं कि इसकी हलचल है। बड़े-बड़े लोग फार्म हाउस बना रहे हैं। व्यापारी भी भय से अपने द्वारा उपजाये हुए अन्न को खाना चाह रहा है।

प्रो. योगेन्द्र : आपकी दृष्टि से एक सामाजिक कार्यकर्त्ता को क्या करना चाहिए?

शिव विजय भाई : चिंता और चरित्र दोनों को समेटना है। यही सामाजिक कार्यकर्त्ता का काम है। चिंता शहरी लोगों में है और चरित्र गाँव के लोगों में।

प्रो. योगेन्द्र : भाई जी! आपने अपने उत्तर में एक संकेत दिया है कि चिंता शहरी लोगों में है और चरित्र गाँव के लोगों में। क्या इन दोनों को समन्वित नहीं किया जा सकता।

शिव विजय भाई : महात्मा गांधी ने

अपने जीवनकाल में इसी प्रकार का समन्वय किया था। आज भी इसी पर काम करने की जरूरत है, ज्ञान और पैसा शहर के लोगों के पास है और श्रम का चरित्र गाँव में बचा है। यदि ये दोनों मिल जायें, तो मुझे लगता है कि देश में बेहतर परिणाम आ सकते हैं। स्नेहेन सहजीवन की बात बाबा विनोबा ने भी की थी। उसको भी इसमें शामिल किया जा सकता है।

प्रो. योगेन्द्र : आप बुंदेलखंड से हैं, बुंदेलखंड इस समय प्यास और भूख से बिलबिला रहा है। कृपया वहाँ की दशा पर प्रकाश डालने की कृपा करें।

शिव विजय भाई : बुंदेलखंड की वर्तमान स्थिति बड़ी भयावह है। अतीत से जुड़ी फलश्रुति है। पिछले साल असामयिक बारिश और ओलों ने फसल को बर्बाद कर दिया। इस साल सूखा पड़ गया। इस तरह किसान पूरी तरह बर्बाद हो गया। इस तरह के हालात पिछले दस साल से बन रहे हैं। पिछले पाँच वर्षों से बड़ी भयावह स्थिति है। इन वर्षों में पलायन बढ़ा है। अशिक्षा, गरीबी, कुपोषण बढ़ा है। खनिज का शोषण पूर्व से चला आ रहा है। पहाड़ लगभग खत्म हो गये हैं। बालू खनन माफियाओं ने नदियों का सत्यानाश कर दिया है। जानवर अपनी भूख-प्यास बुझाने के लिए दर-दर भटक रहे हैं। नदियों में पानी नहीं बचा हे। यद्यपि सरकार आगे आयी है। लेकिन वह पर्याप्त नहीं है।

प्रो. योगेन्द्र : भाई जी! बुंदेलखंड में पानी की समस्या आज की ही देन है, ऐसा नहीं कहा जा सकता? क्योंकि यहाँ के चन्देल राजाओं ने ऐसे तालाबों का निर्माण किया था, जहाँ बारिश का पानी इकट्ठा होता था। ऐसे भी साक्ष्य मिले हैं कि उन्होंने एक तालाब को दूसरे से जोड़ भी दिया था। क्या उसे पुनः जीवित नहीं किया जा सकता?

शिव विजय भाई : जी नहीं। आज के हालात का हल भूतकाल में ढूँढना मेरी दृष्टि से ठीक नहीं है। अब कैचमेंट एरिया बची नहीं। टोबोग्राफी हुई, लैंड सेटलमेंट हुआ। अतीत को वर्तमान में उतरना कठिन लगता है।

प्रो. योगेन्द्र : देश में तमाम सामाजिक संगठन हैं, क्या वे इस क्षेत्र में काम करने के लिए आगे नहीं आये हैं?

शिव विजय भाई : कुछ लोग काम कर रहे हैं। लेकिन वे काम कम और हल्ला ज्यादा मचाते हैं। बहुत सकारात्मक क्रियाशीलता नहीं दिखायी देती है।

प्रो. योगेन्द्र : बुंदेलखंड इस समस्या से कैसे उबरेगा? इसके लिए आप कुछ जमीनी सुझाव दीजिये।

शिव विजय भाई : बुंदेलखंड को इस समस्या को उबारने के लिए सरकार को यहाँ के लोगों को साथ काम करना चाहिए। तभी कुछ उल्लेखनीय सफलता मिल सकती है। वाटर हार्वेस्टिंग, रूफ हार्वेस्टिंग, ड्रिप इरिगेशन, मेड़बंदी, रिच तो वैली सिस्टम, वर्षा के जल को अधिक से अधिक संग्रह करना। यही सब काम करने की जरूरत है।

प्रो. योगेन्द्र : भाई जी! अभी तक आपने किन-किन संस्थाओं में काम किया है या कर रहे हैं?

शिव विजय भाई : मैंने अभी तक दर्जनों सामाजिक संस्थाओं में काम किया है और कर भी रहा हूँ। सभी संस्थाओं से मेरा जुड़ाव आज भी बना हुआ है। उनका सिलसिलेवार विवरण इस प्रकार है— डायरेक्टर–विनोबा गो सेवा सदन, सीनियर सुपरवाइजर–सर्वोदय सेवा आश्रम चित्रकूट, जिला परियोजना प्रबंधक–महिला कल्याण निगम उत्तर प्रदेश सरकार, प्रदेश सचिव–रचनात्मक समाज, सहमंत्री–हरिजन सेवक संघ उत्तर प्रदेश इकाई, महामंत्री–उत्तर प्रदेश सर्वोदय मंडल, संयोजक–सर्व सेवा संघ प्रकाशन, संयोजक–सर्व सेवा संघ परिसर, राष्ट्रीय मंत्री–आचार्य कुल, कोषाध्यक्ष–समग्र विकास सेवा आश्रम, प्रबंधक–कस्तूरबा आवासीय बाल विद्यालय, संचालक–बुंदेलखंड को-ऑपरेशन सर्किल चैप्टर ऑफ यूनाइटेड रिजीनियस इनिसिएटिव, अमेरिका।

प्रो. योगेन्द्र : आपसे हुई बातचीत से यह बात पता चली कि आप पूर्ण कालिक सामाजिक कार्यकर्त्ता हैं। फिर आपके परिवार का भरण-पोषण कैसे होता है?

शिव विजय भाई : जहाँ तक परिवार के भरण-पोषण का प्रश्न है। मेरे पास पैतृक जमीन है। उसमें होने वाली उपज से ही मेरे परिवार का भरण-पोषण होता है और इसी से मैं अपने सामान्य दैनिक खर्चे भी आहरित करता रहा हूँ।

प्रो. योगेन्द्र : क्या आप अपने समाज सेवा के कदम से पूरी तरह संतुष्ट हैं?

शिव विजय भाई : इस काम से आत्मसंतोष तो प्राप्त हुआ। पर बाजार इतना तेज दौड़ जायेगा, इसका अंदाजा नहीं था। जिसके कारण ऐसा लगता है कि अपने स्तर से बच्चों के शैक्षिक उन्नयन के लिए संसाधन जुटाना वर्तमान परिप्रेक्ष्य में असंतोष का बोध कराते हैं। इसके अलावा जिस स्टैण्डर्ड से लड़का पढ़ रहा है, उससे नीचे के स्तर पर वह पढ़ने के लिए तैयार नहीं होता है। लड़की की शादी करनी है। तो वह अपनी इच्छा के अनुरूप नहीं हो सकती। पुरुष प्रधान समाज में कुछ समझौते तो उसे करने ही पड़ते हैं। हमें भी करने पड़ते हैं। लेकिन फिर भी इसका प्रतिशत 25 ही बैठता है, 75 प्रतिशत तो मैं संतुष्ट हूँ।

प्रो. योगेन्द्र : शिव विजय भाई पुराने साथी होने के कारण आपने मुझे इतना समय दिया। अमूल्य जानकारियाँ दी, इसके लिए आपका बहुत-बहुत धन्यवाद। ❑

गाजर के औषधीय गुण

❑ डॉ. योगेन्द्र यादव

भारतीयों में फल, सब्जी एवं सलाद के रूप में प्रयोग की जानेवाली गाजर गरीबों का टानिक है। इसमें विटामिन बी प्रचुर मात्रा में पायी जाती है। इसमें जो पोषक तत्त्व होते हैं, वे सेवन करनेवाले के लिए बहुत ही फायदेमंद होते हैं। इसके कुदरती गुण कई बीमारियों में बेहद फायदेमंद होते हैं।

कमजोरी दूर करने में फायदेमंद–गाजर में संतुलित आहार के सभी गुण मौजूद होते हैं। यदि इसके रस का नियमित उपयोग किया जाये तो किन्हीं कारणों से आयी कमजोरी दूर की जा सकती है। इसका रस पीते ही रक्त की मात्रा बढ़ना प्रारंभ हो जाती है। रक्त में कोलेस्ट्राल जमने की प्रक्रिया मंद हो जाती है। मरदाना शक्ति में इजाफा होता है। यदि अधिक काम करने से थकावट आ गयी हो, तो वह दूर हो जाती है। गर्भिणी महिला एवं बच्चों के लिए भी यह बहुत फायदेमंद है। इसको पीने से स्मरण शक्ति में भी वृद्धि होती है। यदि आँखों की रोशनी धुँधली हो गयी हो तो वह तेज हो जाती है। क्योंकि इसमें विटामिन ए भी प्रचुर मात्रा में पायी जाती है। इसके अलावा आँख सम्बन्धी अन्य रोगों में भी फायदेमंद होती है।

महिला रोगों में फायदेमंद–महिला रोगों को दूर करने में इसकी अहम भूमिका हो सकती है। यदि मासिक धर्म में दर्द होता हो, या वह बंद हो गया हो, या गर्भाशय में कोई दोष आ गये हों, या श्वेत प्रदर से महिला पीड़ित हो, तो तीन चम्मच गाजर के बीजों को कूटकर उसे गूढ एवं नमक के घोल में उबाल लें, जब आधा पानी रह जाय तो उसे सुबह-शाम पीयें। इससे उपरियुक्त सभी रोगों में फायदा होगा। यदि महिला का गर्भपात हो जाता हो तो एक गिलास गाजर का जूस और एक गिलास दूध को मिलाकर उबाल लें। जब आधा मिश्रण बच जाय, तो उसे सुबह-शाम पीते रहें, इससे गर्भपात की समस्या से निजात मिलेगी। किन्तु इसके लिए कुछ परहेज की भी जरूरत है। उस महिला को चटपटी चीजें, चाट, पकौड़ी खाने से बचना चाहिए। यदि महिला को अपने बच्चे को पिलाने के लिए पर्याप्त दूध नहीं हो रहा हो तो उसे जीरा मिलाकर सुबह-शाम एक गिलास गाजर का जूस पीना चाहिए। इससे पर्याप्त मात्रा में दूध बनने लगेगा। जिन महिलाओं को हिस्टीरिया की बीमारी हो, उसे एक गिलास गाजर के जूस में आधा नीबू निचोड़ कर देना चाहिए, इससे उसका यह रोग दूर हो जाता है।

हृदय रोग में फायदेमंद–हृदय रोगियों के लिए गाजर बहुत ही फायदेमंद है। हार्ट अटैक के रोगियों को गाजर एवं पालक का जूस मिलकर पीना चाहिए। इससे उनके हृदय की गति नियमित हो जाती है। गाजर का मुरब्बा खाने से भी यह रोग दूर होता है। एक गिलास गाजर के रस में एक नीबू निचोड़ कर पीने से भी लाभ होता है। इसे पीने से हृदय को बल एवं शीतलता प्राप्त होती है। सीने में दर्द की शिकायत हो तो एक गिलास गाजर के रस में स्वादानुसार शहद मिलाकर पीने से दर्द होना बंद हो जाता है।

दाम रोग में फायदेमंद–गाजर का जूस दमा रोगियों के लिए भी बहुत फायदेमंद है। यदि दमा रोगी सुबह और दोपहर एक-एक गिलास गाजर का जूस पीता है तो उसे आश्चर्यजनक रूप से फायदा होता है। यह प्रक्रिया कम से कम 15 दिन करनी चाहिए। यदि कोई दमा रोगी लम्बे समय तक भी गाजर का जूस पीता है, तो भी उसे कोई हानि नहीं होती है। इसके अलावा दमा रोगी को गाजर, चुकंदर और शलजम तीनों की समान मात्रा में रस निकालकर उसे एक गिलास दूध में मिलाकर आधी मात्रा रहने तक उबाल लेना चाहिए। फिर उसमें थोड़ा-सा शहद मिलाकर उसे सुबह-दोपहर-शाम पीना चाहिए। इससे दमा ठीक हो जायेगा।

गठिया, जोड़ों के दर्द में फायदेमंद–जिन रोगियों को गठिया या जोड़ों का दर्द हो, उसके लिए गाजर का जूस बहुत ही फायदेमंद है। इस प्रकार के रोगियों को दिन में तीन बार एक-एक गिलास गाजर का जूस देना चाहिए। इस तरह इसका उपयोग करने से रोगी को बहुत फायदा होता है। इसका कारण है कि गाजर शरीर की प्रतिरोधक क्षमता तो बढ़ाता है, जिससे यह रोग ठीक हो जाता है। इसके अलावा गाजर, चुकंदर और पत्तागोभी का बराबर मात्रा में रस मिलाकर उसे शहद के साथ लेने से जोड़ों का दर्द ठीक हो जाता है। चार कली लहसुन, पत्तागोभी और गाजर की चटनी भोजन के साथ खाने से भी इस प्रकार के रोगियों को फायदा मिलता है। इसके अलावा रोगी एक गिलास गाजर के रस में काली मिर्च और सेंधा नमक मिलाकर पीने से भी फायदा होता है।

पेट के रोग में फायदेमंद–जिन्हें आँतों की गैस, ऐठन, शोथ, घाव, जलोदर, अपच या पेट में वायु पैदा होती हो, उनके लिए गाजर बहुत ही फायदेमंद है। इस प्रकार रोगियों को नियमित रूप से गाजर के रस का सेवन करना चाहिए। उन्हें आश्चर्यजनक रूप से फायदा होगा। गाजर, नीबू और पालक का रस पीने से कब्ज दूर हो जाता है। यदि पेट में गैस बन रही हो, तो गाजर का एक कप रस उसके एक चौथाई प्याज के रस में काला नमक और अदरक का रस मिलाकर पीने से कब्ज ठीक हो जाता है। यदि किसी को दस्त आने लगे तो उसे एक गिलास गाजर के रस में दो चम्मच शहद मिलाकर पीने से आराम मिलता है। एक कप गाजर के रस में भुना हुआ जीरा डालकर दिन में चार बार पीने से फायदा पहुँचता है। पेचिस के रोगियों जिन्हें रक्त आता हो, समान मात्रा में गाजर और दूध मिलाकर नित्य दो बार पीने से लाभ होता है। जिन पेट के रोगियों की आँतों में सूजन हो, उन्हें 185 ग्राम गाजर रस, 150 ग्राम चुकंदर रस और 160 ग्राम खीर का रस। तीनों को मिलाकर दिन में तीन बार पीने से रोगी की आँतों का सूजन उतर जाता है।

कैंसर रोगियों के लिए फायदेमंद–कैंसर रोगियों के लिए गाजर उपयोगी है। यदि कैंसर रोगी अपने भोजन में किसी न किसी रूप में नियमित रूप से गाजर का उपयोग करता है, तो उसे फायदा होता है। किन्तु कैंसर रोगी को मसाला डले गाजर और पालक रस नियमितर रूप से पीना चाहिए। किन्तु इसमें नमक नहीं डालना चाहिए। गाजर, पालक के रस में थोड़ा-सा अदरक का रस मिलाकर पीने से भी रोगी को फायदा होता है। कैंसर रोगी जब तक जीवित रहे, गाजर का जूस पीता रहे, निश्चित ही उसे फायदा लगेगा।

चर्म रोग में फयदेमंद–गाजर का रस चर्म रोगियों के लिए बहुत ही फायदेमंद है। इसके नियमित सेवन से रक्त शोधन हो जाता है। इस कारण किसी भी कारण से हुए चर्म रोग में फायदा पहुँचता है। जिन रोगियों को सफेद दाग हो, उन्हें अधिक से अधिक गाजर खाना चाहिए और जूस भी पीना चाहिए। बस इसके साथ खटाई और नीबू का सेवन करने से बचना चाहिए। जिनकी चमड़ी रूखी हो, गाजर के एक गिलास रस में भूना पिसा जीरा और काला नमक मिलाकर नियमित रूप से पीना चाहिए। इसके अलावा कद्दूकस में गाजर को कस कर उसे दूध में उबालकर उसका बुरा बना लें, शाम को गाजर के रस के साथ उसका सेवन करना फायदेमंद साबित होता है। दाद या खुजली होने पर गाजर और पालक का रस दिन में चार बार पीयें, फायदा होगा। गाजर का खीर बनाकर खायें। गाजर, पालक और खीरे के रस को खाली पेट पीयें, फायदा होगा।

डायबिटीज में फायदेमंद–गाजर एवं उसका जूस डायबिटीज रोग की भी बहुत ही कारगर दवा है। 310 ग्राम गाजर का रस, 185 ग्राम पालक के रस में मिलाकर पीयें, बहुत फायदा होगा। इसके अलावा एक गिलास गाजर का रस, एक कप करेले का रस, आधा कप आँवले का रस मिलाकर दिन में तीन बार पीने से फायदा होता है। इसके अलावा गाजर, मूली, जामुन की गुठली सब मिलाकर रस निकाल कर एक-एक गिलास दिन में दो बार पीने से मधुमेह में फायदा मिलता है। इसके अलावा 100 ग्राम गाजर के रस में दो-दो चम्मच प्याज और करेले का रस मिलाकर नित्य दो बार पीने से मधुमेह की बीमारी ठीक हो जाती है। इन सबके साथ मरीज को सूखा धनिया, गाजर, करेला और सेंधा नमक सबकी मात्रा स्वादानुसार की चटनी भी भोजन के साथ खाना चाहिए। ❑

कार्यकर्ता का आत्म-शिक्षण

❑ **विमला बहन**

ग्रामस्वराज्य का कार्य करने के लिए सर्वोदय-कार्यकर्ता को अपने को मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से तैयार करना होगा।

सर्वोदय कार्यकर्ता को आत्मनिरीक्षण करना और अपने को शुद्ध करना होगा। उसे मनोवैज्ञानिक एवं वाणी के शुद्धीकरण की प्रक्रिया से गुजरना होगा। ऐसा शुद्धीकरण उसे सम्पूर्ण क्रान्ति और आध्यात्मिकता के विषय में गाँववालों से बात करने के योग्य बनायेगा।

हमें यह देखने के लिए अपने अन्तस् में प्रवेश करना होगा कि क्या हमारे जीवन और बातचीत के व्यवहार में कोई अराजकता है? क्या हम व्यक्तिगत जीवन में हिंसक हैं? तब हम अहिंसा के विषय में कैसे बात कर सकते हैं? जो लोग सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में काम कर रहे हैं उनके जीवन में अनेकों विषमताएँ हैं। अपने स्वयं के व्यक्तिगत जीवन में वे पूँजीवादी, सामन्तवादी हैं। वे क्रोधी, कटु, हिंसक और सनकी हैं। तब वे सर्वोदय की बात कैसे कर सकते हैं?

यदि मेरे हृदय में धन का लोभ है, यदि मेरे हृदय में कटुता और घृणा है तो चाहे हम प्रवचन करें और कार्य भी करें किन्तु संदेश का प्रेषण नहीं होगा, क्योंकि मेरा हृदय सर्वोदय के विरुद्ध प्रेरणाओं से भरा है। बौद्धिक विश्वास एक अच्छा भाषण देने में आपकी सहायता कर सकता है। किन्तु जब तक हृदय में श्रद्धा नहीं है, वह श्रोताओं को प्रभावित या चालित नहीं करेगा।

सर्वोदय कार्यकर्ता को अपने जीवन से अधिक-से-अधिक विषमताओं को गलित करने के अभ्यास में लगना होगा, जितनी कि संभव हों। वह एक आध्यात्मिक अन्वेषक जिज्ञासु अर्थात् साधक होगा न कि केवल एक कार्यकर्ता। गांधीजी अपने पूरे जीवन में एक साधक रहे। हम जब काम करें और सर्वोदय के कार्यों में संलग्न हों तब अपने शुद्धीकरण की भी चिन्ता करें।

हमें यह जानना होगा कि क्या हम निःस्वार्थ तरीके से, अनासक्त भाव से काम कर सकते हैं? प्रत्येक कार्य को जब हम कर रहे हों उसे ईश्वर को समर्पित करना होगा और हमें सचेत रहना होगा कि हम केवल अस्थि और मांस, मन और मस्तिष्क नहीं हैं वरन् इससे और अधिक हैं। हम ब्रह्म एवं ईश्वर से सम्बन्धित हैं। यह चेतना प्रत्येक सर्वोदय कार्यकर्ता की होनी चाहिए। यह चेतना कैसे आ सकती है? कौन हमें यह सिखायेगा? हमें स्वयं अपने विषय में सीखना होगा कि हम कैसे प्रारम्भ करें।

पहला काम जो करना है वह यह कि अपने जीवन में एक ताल, एक समरसता उत्पन्न करनी होगी। मुझे एक शिकायत पूरे भारत में सब कार्यकर्ताओं से है कि वे अपने भौतिक शरीर की उपेक्षा करते हैं; वे किसी भी समय खाते और सोते हैं। गांधीजी अपने भोजन के समय का पालन कर सकते हैं। विनोबाजी सारे भारत गाँव-गाँव तक का भ्रमण करते हुए तथा भोजन और सोने के निश्चित समय का पालन कर सकते हैं और हम यह नहीं कर सकते! मेरा अनुरोध है कि प्रत्येक सर्वोदयी कार्यकर्ता अपने शरीर को ईश्वर की धरोहर समझे। वहाँ वह (trustee) का कर्तव्य पालन करें।

(एक सर्वोदय-शिविर में हुए प्रवचन का संक्षिप्त अंश)

एक क्रांति मचलने वाली है...

❑ *लक्ष्मी निधि*

गद्दार बने गद्दी वाले, जब नेता ही हत्यारा हो,
उस घर का बोलो क्या होगा, जब घरवाला ही बना लुटेरा हो?

ऐसे नेताओं से हमको, अपना देश बचाना है,
इस राजनीतिक के साँचे को, फिर से नया बनाना है।

वह वोट-नोट का पागल है, डायनासोर जैसा खाऊ हैं,
वह वेतन बेच खाने वाला है, मालूम है बड़ा बिकाऊ है।

मस्जिद में जाकर सजदे में, वह अपनी कमर झुकाता है,
मंदिर में जाकर धरती पर, वह लोट-पोट हो जाता है।

यह धरम-करम, इस पापी का खेला है, एक तमाशा है,
नेता है मालोमाल मगर, जनता में घोर निराशा है।

लेकिन भारत के सीने में, एक आग उबलने वाली है,
हो रहा लाल अम्बर देखो, एक क्रांति मचलने वाली है।

जनतंत्र में जनता का कोई, अधिकार नहीं मरने वाला,
हो रहा प्रकट जो क्रान्ति दूत, वह नहीं कभी डरने वाला,

जो शहीद हो चुके वतन पर, वो तो अमर सेनानी हैं,
इस क्रांति दूत के गर्जन ने, उसकी ही भरी जवानी है।

❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा प्रिण्टेक, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार। छपी प्रतियाँ : 1450